# कृषक प्रशिक्षण पुस्तिका

## उन्नत भेड़ बकरी एवं खरगोश पालन

2020

## अनुसूचित जाति उपयोजना

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर

राजस्थान-304501

अनुसूचित जाति उप-योजना
"उन्नत भेड़-बकरी व खरगोश पालन"
कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम

# उन्नत भेड़ बकरी एवं खरगोश पालन

# कृषक प्रशिक्षण व्याख्यान पुस्तिका

**2020**


## सम्पादक

डॉ. लीलाराम गुर्जर

## सम्पादक मण्डल

डॉ. दिनेश बाबू शाक्यवार

डॉ. प्रशान्त कुमार मलिक

डॉ. अजय कुमार

डॉ. विजय कुमार

डॉ. एस जगवीरा पांडियान

श्री महेश चन्द मीणा

डॉ. राघवेन्द्र सिंह



## आयोजक

तकनीकी स्थानान्तरण एवं सामाजिक विज्ञान विभाग,
केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर,
राजस्थान - 304501

© केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर
वर्ष : 2020

**प्रकाशन**
**निदेशक,**
केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, राजस्थान-304501

**मुख्य पृष्ठ डिजाइन**
डॉ. लीलाराम गुर्जर
डॉ. सुरेश चन्द्र शर्मा

**रचना एवं हिन्दी अनुवादक**
राजेश कुमार प्रजापत

**विस्तृत जानकारी के लिए**
दूरभाष नं. : 01437 220155, फैक्स नं. 01437 220162
वेबसाइट : www.cswri.res.in
ई-मेल : cswriavikanagar@yahoo.com

# आमुख

भारत की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतया कृषि पर आधारित है जिसकी लगभग 58 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं कृषि सम्बन्धित आयामों पर आश्रित है। 20वीं पशुधन जनगणना (2017) के अनुसार भारत में भेड़ों की संख्या लगभग 7.4 करोड़ है तथा विश्व में इसका तीसरा स्थान है। भेड़ पालन में देश में प्रथम स्थान तेलंगाना (25 प्रतिशत), दूसरा स्थान आंध्रप्रदेश (22 प्रतिशत), तीसरा स्थान कर्नाटक (15 प्रतिशत) तथा चौथा स्थान राजस्थान का (10 प्रतिशत) हैं। 2017 की पशु गणना के अनुसार राजस्थान में भेड़ों की संख्या 79,10,000 थी जिसका 99 प्रतिशत भाग गांवों में ही रहता हैं। राज्य में लगभग 2.5 लाख परिवार सीधे ही भेड़ व्यवसाय पर तथा इतनी ही संख्या में इनसे प्राप्त उत्पाद जैसे– ऊन, मांस, चमड़ा के विपणन व उन पर आधारित उद्योगों पर आश्रित है।

राज्य का अधिकतर भू–भाग शुष्क एवं अर्द्धशुष्क जलवायु के अन्तर्गत आता है एवं राज्य का आर्थिक आधार मुख्यतः खेती एवं पशुपालन पर आधारित है। पूर्णतया वर्षा पर आधारित खेती, लगातार सुखे की स्थिति एवं वर्षा के कम होने के परिणाम स्वरूप लोगो की टिकाऊ आजीविका बनाये रखने में एक बड़ी समस्या है। राज्य की जलवायु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये किसानों को खेती के साथ–साथ पशुपालन करना आर्थिक रूप से मजबूती प्रदान करता है। पशुपालन व्यवसाय देश एवं राज्य के सकल घरेलु उत्पाद में एक महत्वपूर्ण स्थान रखने लगा है। राजस्थान में लगभग 80 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण जनसंख्या पशुधन रखती है। आर्थिक एवं प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न किसान बड़े जानवर (भैंस, गाय) पालकर अपनी आमदनी और सुदृढ़ कर सकते हैं। लेकिन आर्थिक रूप से पिछड़े हुए लघु व सीमान्त किसान जिनके पास संसाधनों की कमी होती है ऐसे किसानों के लिए भेड़–बकरी (लघु रोमन्थी पशु) व्यवसाय उनकी आजीविका को सुदृढ़ करने में एक वरदान साबित हो रहा है।

केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान–भेड़, बकरी एवं खरगोश पालन के विभिन्न क्षेत्रों में किसानों को आ रही समस्याओं के निराकरण हेतु देश का एक मात्र अग्रणी संस्थान है जो कि इन लधुरोमंथी पशुओं की अधिक उत्पादकता प्राप्त करने के उद्देश्य से विगत पाँच दशकों से निरन्तर बुनियादी एवं व्यावहारिक अनुसंधान कर रहा है। संस्थान ने इन जानवरों के नस्ल सुधार, रख–रखाव, स्वास्थ्य, प्रजनन एवं पोषण संबंधी समस्याओं के निराकरण हेतु शोध कार्य कर कई तकनीकियाँ विकसित की है जिससे इस व्यवसाय को अधिक रोजगारोन्मुख बना कर गरीब किसानों की आय में वृद्धि की जा सके। इसी उद्देश्य के तहत किसानों के लिय भेड़, बकरी व खरगोश पालन पर समय–समय पर संस्थान में तकनीकी स्थानान्तरण एवं सामाजिक विज्ञान विभाग द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते है। प्रशिक्षण को और अधिक प्रभावी बनाने के उद्देश्य से विभिन्न विषय विशेषज्ञों के सहयोग से किसानों के लिए सरल भाषा में भेड़, बकरी एवं खरगोश पालन विषय पर यह प्रकाशन किया जा रहा है। मेरा ऐसा विश्वास है कि यह प्रशिक्षण पुस्तिका संस्थान के कृषक विकास हेतु तय उद्देश्यों और कार्यक्रमों को सफल बनाने में सकारात्मक भूमिका निभायेगी। मैं, नोडल अधिकारी, अनुसूचित जाति उप योजना एवं समस्त वैज्ञानिकों को बधाई देना चाहता हूँ जिन्होंने अपने कठिन परिश्रम से कृषक प्रशिक्षण पुस्तिका को पूरा किया।

**राघवेन्द्र सिंह**
निदेशक

# प्राक्कथन

तकनीकी स्थानान्तरण एवं सामाजिक विज्ञान विभाग भेड़, बकरी एवं खरगोश पालन एवं उत्पाद निर्माण विषय पर भेड़ पालको, किसानों, कुशल कारीगरों आदि के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि के लिए विभिन्न स्तर के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है। ये प्रशिक्षण कार्यक्रम उन्नत भेड़ बकरी एवं खरगोश पालन विषय पर व्याख्यान एवं प्रायोगिकी विधि के माध्यम से आयोजित किये जाते है। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अभी तक कई समूहों में सैंकडो लाभार्थियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है। प्रशिक्षण के दौरान किसानों को संस्थान में चल रहे शोध कार्यो, भेड़, बकरी एवं खरगोशों की उत्तम नस्लों, उनके स्वास्थ्य, पोषण, रख–रखाव एवं ऊन से निर्मित उत्पादों के बारे में विस्तृत एवं व्यावहारिक जानकारी प्रदान की जाती है।

वैश्वीकरण के बदलते दौर में इन व्यवसायों को सुचारू रूप से चलाने एवं खुले बाजार में इस व्यवसाय से प्राप्त उत्पाद को स्पर्धा में बनाये रखने हेतु यह आवश्यक है कि किसान वैज्ञानिक तरीके से भेड़–बकरी एवं खरगोश पालन करे परन्तु इस व्यवसाय से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर सरल मातृ भाषा में उपलब्ध जानकारी की कमी है। इस हेतु न केवल किसानों का अपितु प्रशिक्षकों और कृषि पर्यवेक्षकों का सुव्यवस्थित ज्ञान, किसान के उत्पादन की उत्पादकता एवं गुणवत्ता बढ़ाने में सहायक होगा एवं उन्हे आर्थिक लाभ भी देगा। इसी क्रम में प्रशिक्षण को और प्रभावी एवं व्यवहारिक बनाने के उद्देश्य से यह कदम उठाया है कि कम समय में प्रभावी ढ़ंग से अधिकाधिक जानकारी दे सके। इस हेतु यथोचित पाठ्य सामग्री का सरल एवं सुबोध भाषा में संकलन कर प्रकाशित किया जा रहा है।

यह पाठ्य सामग्री अनुसूचित जाति उप योजना के तहत तैयार की गई है एवं सामग्री को तैयार करने के दौरान दिये गये प्रोत्साहन एवं प्रदान की गई आवश्यक सुविधाओं के लिए डॉ. राघवेन्द्र सिंह, निदेशक का आभार प्रकट करता हूँ। पाठ्य सामग्री में दिये सहयोग के लिए समस्त वैज्ञानिकों विशेषरूप से लेखक, सम्पादक एवं सम्पादक मण्डल के सदस्यों का आभार प्रकट करता हूँ। अंत में अन्य सभी लोगों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होने इस पुस्तिका को तैयार करवाने में अपना प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग प्रदान किया है।

**दिनेश बाबू शाक्यवार**
नोडल अधिकारी,
एस.सी.एस.पी

# ✍ सम्पादकीय

अनुसूचित जाति उप योजना के तहत संस्थान में किसानों, पशुपालकों एवं दस्तकारों के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं इन प्रशिक्षणों के दौरान प्रशिक्षण पुस्तिका तैयार कर उसको प्रकाशित करने की आवश्यकता महसूस हुई है। उनकी सुलभ समझ के लिए इसमें सरल भाषा के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। आशा है किसान भाईयों एवं पशुपालकों के लिए यह संकलन उपयोगी साबित होगा।

पुस्तिका में भेड़–बकरी पालन का महत्व एवं उनकी उन्नतशील नस्लों पर प्रकाश डाला गया है। उन्नत नस्ल के मेढ़ों एवं बकरों का विकास व उनका यथोचित उपयोग उत्पादकता बढ़ाने में वांछनीय है। प्रजनन संबंधी जानकारी को समझाया गया है। आगे के अध्यायों में चारा, दाना व्यवस्था, उचित पोषण एवं स्वास्थ्य पद्धतियों की जानकारी किसान भाईयों को ज्ञानवर्धन और उनके उपयोग के लिए दी गई है। उनमें से कुछ का वे स्वयं अपने स्तर से उपयोग कर सकेंगें और कुछ के लिए अपने नजदीकी विषय विशेषज्ञों की मदद से उपयोग करने में सक्षम होंगे।

रोगों के उपचार का अध्याय बहुत लाभकारी सिद्ध होगा। इसमें बीमारियों के कारणों की जानकारी के साथ उपचार एवं निदान का समावेश भी किया गया है। साथ ही रेवड़ के अच्छे स्वास्थ्य हेतु वार्षिक कार्यक्रम दिया गया है जिसकी सहायता से पशुओं की मृत्यु दर एवं रोग ग्रस्तता दर को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

खरगोश पालन पर भी व्यावसायिक ईकाई आरम्भ करने के क्रम में नस्ल, प्रजनन, स्वास्थ्य, आहार इत्यादि पर यथोचित जानकारी प्रदान की गयी है। साथ ही शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में इसके पालन पर आर्थिक लाभ को अच्छी तरह बताया गया है।

पुस्तिका के अंतिम अध्यायों में भेड़–बकरी के विपणन की समस्याऐं उनका निदान, भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार द्वारा किसानों एवं पशुपालकों के लिये चलाई जा रही योजनाओं एवं वर्तमान परिपेक्ष में स्वयं सहायता समूह व सहकारी समितियों की कार्यप्रणाली तथा उनके महत्व के बारे में बताया गया है ताकि किसान भाई इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए एक व्यवसाय के रूप में भेड़–बकरी एवं खरगोश पालन को अपना सके।

आशा है यह पुस्तिका किसानों के लिए एक वरदान सिद्ध होगी। सम्पादक मण्डल सभी वैज्ञानिकगणों, तकनीकी अधिकारियों एवं प्रकाशन में सहयोग प्रदान करने के लिए सभी लोगों का आभार प्रकट करता है।

**सम्पादकगण**

# विवरणिका


| क्र.सं. | अध्याय | लेखकगण | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| 1. | भेड़ बकरी पालन का महत्व | अरूण कुमार, सिध्दार्थ सारथी मिश्रा, रमेश चन्द शर्मा, गोपाल आर गोवाने | 01 |
| 2. | भेड़ों की प्रमुख नस्लें, पहचान एवं उनका महत्व | गोपाल आर गोवाने, रमेश चन्द शर्मा, राजीव कुमार, अरूण कुमार | 06 |
| 3. | बकरियों की प्रमुख नस्लें | सिध्दार्थ सारथी मिश्रा, इंद्रसैन चौहान, गोपाल आर. गोवाने अरूण कुमार | 19 |
| 4. | भेड़–बकरियों में प्रजनन संबंधी समस्यायें एवं समाधान | कृष्णप्पा बी, बहीरे संघरत्ना, कल्याण डे, विजय सक्सेना एवं देवेन्द्र कुमार | 24 |
| 5. | भेड़–बकरियों की पोषण व्यवस्था एवं उन्नत तकनीकियाँ | सुरेन्द्र कुमार सांख्यान, आर्तबन्धू साहू, रणधीर सिहॅ भट्ट एवं ओम हरी चतुर्वेदी | 29 |
| 6. | वर्षभर हरा चारा उगायें, पशु उत्पादकता बढायें | सुरेश चन्द्र शर्मा, लीलाराम गुर्जर व रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी | 35 |
| 7. | भेड़ों के लिए आवास व्यवस्था | विजय कुमार, कल्याण डे, अर्पिता महापात्रा, देवेन्द्र कुमार, कृष्णाप्पा बी. एवं राघवेन्द्र सिंह | 40 |
| 8. | भेड़ व बकरियों के रोग : लक्षण, कारण, रोकथाम व उपचार | चन्द्रप्रकाश स्वर्णकार | 44 |
| 9. | ऊन उत्पादन की प्रक्रिया : ऊन कल्पन एवं श्रेणीकरण की सामान्य जानकारियाँ | अजय कुमार एवं दिनेश बाबू शाक्यवार | 58 |
| 10. | भेड़ के मांस एवं दूध का मूल्य संवर्धन | योगेश पी.गाडेकर, गौरी जैरथ एवं ए.के. शिन्दे | 63 |
| 11. | मांस हेतू खरगोश की नस्लें एवं प्रजनन | देवेन्द्र कुमार, रणधीर सिहॅ भट्ट एवं अरूण कुमार | 68 |
| 12. | खरगोशों का स्वास्थ प्रबंधन | चन्द्र प्रकाश स्वर्णकार एवं सीताराम शर्मा | 71 |
| 13. | खरगोशों की आहार व्यवस्था | रणधीर सिहं भट्ट, आर्तबन्धू साहू एवं सुरेन्द्र कुमार सांख्यान | 76 |
| 14. | भेड़–बकरी विपणन की समस्याएँ एवं निदान | लीलाराम गुर्जर, सुरेश चन्द्र शर्मा एवं राजकुमार | 81 |
| 15. | पशुपालकों को भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार द्वारा प्रदत्त योजनाऐं एवं सेवाऐं | राजकुमार, लीलाराम गुर्जर एवं अनिल परतानी | 83 |
| 16. | स्वयं सहायता समूह एवं सहकारी समितियों का गठन महत्व एवं कार्य प्रणाली | लीलाराम गुर्जर एवं रंगलाल मीणा | 88 |

# भेड़ बकरी पालन का महत्व

**अरूण कुमार, सिध्दार्थ सारथी मिश्रा, रमेश चन्द शर्मा, गोपाल आर गोवाने**

पशुपालन व्यवसाय भारत में किसानों की आजीविका का महत्वपूर्ण स्रोत है। पशुपालन व्यवसाय में भेड़ एवं बकरी पालन का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृति एवं पशुपालन के इतिहास में भेड़ का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। मौफलोन नामक जंगली भेड़ से उत्पन्न भेड़ों की नस्लें तुर्कमेनिस्तान से पश्चिमी ईरान तक सर्वप्रथम पालतू पशु के रूप में पाली गई। हजारों वर्ष पहले आज जहाँ इराक बसा हैं, वहाँ मानव ने भेड़ को व्यवसाय के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकारा। हजारों वर्शों से भेड़ यात्रा निरंतर चल रही है। भेड़ ने अपना नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित किया है। इस मूक पशु का मानव जाति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि यह समाज के उस हिस्से को आर्थिक और सामाजिक रूप से ऊपर उठाने की क्षमता रखता है जिसे सरकार भी चाहकर सशक्त नहीं बना सकी। मानव विकास के विविध मोड़ों पर भेड़ (अवि) ने अपनी उपयोगिता बनाई रखी है और आशा है कि भविष्य में भी इसका योगदान असाधारण होगा।

भेड़ पालन के इतिहास के बारे में अगर समझे तो पता चलता है कि लगभग 10,000 वर्ष पहले निओलीथीक आदमी ने जंगली भेड़ को पालने की कोशिश की थी। मेसोपोटामिया, ईरान के पहाड़ी क्षेत्र, तुर्की एवं बलुचिस्तान में भेड़ को हिब्रू चरवाहों ने पालना शुरू किया। आज से लगभग 1200 से 10,000 वर्ष पूर्व बालों वाली जंगली भेड़ को पहाड़ियों से पठारों में लाया गया और लगभग आज से 6000 वर्ष पूर्व तक उन्हें ऊन के लिए चयनित किया गया। इसके पश्चात एक से दो हजार सालों में मेसोपोटामियां में ऊन वाली एवं बालों वाली भेड़ों को पालना शुरू किया गया। आर्थिक तथा सामाजिक रूप से मनुष्य को प्रगति के पथ पर ले जाने वाला पशु ''भेड़'' अपनी पहचान धर्मग्रंथों में भी रखने से नहीं चूका। बाईबिल में येशू को एक अच्छा चरवाहा कहा गया है। भेड़ ने इसाई, जुडैजम तथा इस्लाम में समान रूप से अपना महत्व बनाए रखा है। यह सुखद संयोग कि बात है कि पश्चिम–पूर्व एशिया में इन तीनों धर्मों की शुरूआत लगभग उसी समय हुई जब भेड़ पालन एक गौरव पूर्ण व्यवस्था हुआ करता था। भेड़ एक ऐसी इकाई है जो हमें इन तीनों धर्मों की एकता के बारे में सीख देती है। जो लोग भविष्य देखने में विश्वास रखते हैं उन्हे यह भी ज्ञात होगा कि बारह राशियों में सर्वप्रथम मेष राशि आती हैं जो कि भेड़ के आकार के तारा समूह से नामांकित की गई है। भेड़ों में सबसे खास चीज अगर कोई है तो वह हैं उनका समूह में रहना। कई विशेषज्ञों का मानना है कि भेड़ अपने बचाव के लिए समूह में रहती है। यह भी देखा गया है कि सबसे ताकतवर भेड़ अपना स्थान समूह के मध्य में बनाए रखती है। सही मायने में देखा जाए तो यह एक ऐसा गुण है जो भेड़ को ज्यादा दिन जीवित रखने में सहायक सिद्ध होता है। पशु के विकास के दौर में हर जीव ने प्रकृति के नियमों से कुछ सीख ली हैं जिसके चलते गुणसूत्रों में कुछ इस तरह बदलाव हुआ कि भेड़ ने समूह की जीवनशैली को अपने आचरण में ढ़ाल लिया है।

भारत में भेड़ पालन प्रायः गरीब लोगों का व्यवसाय रहा है। सामान्यतः भेड़ मांस एवं ऊन के उत्पादन के लिए जानी जाती है। वर्ष में दो ब्यांत से चार बच्चे पैदा करने वाली भेड़, गरीबों के लिए वरदान साबित हो सकती है। एक किसान अपने भेड़ समूह को सिर्फ पशु के नजरिये से न देखकर बीमे के नजरिये से भी देखता है। कई बार यह भी देखा गया है कि किसान कठिन समय में अपनी भेड़ों को बेचकर जीवन निर्वाह करता है। मांस और ऊन के अलावा भेड़ का दूध भी काफी मात्रा में उपयोग में लाया जाता है। भेड़ के दूध से बनाया गया चीज विश्व की श्रेष्ठ चीज की श्रेणी में आता है। फ्रांस में इसे रोकफोर्ट, कोर्सिका में ब्रोकीन, इटली में पेकोरीनों तथा ग्रीस में इसे फेटा कहा जाता है। ये उत्पाद विश्व बाजार में काफी ग्राहक आकर्षित करते हैं। जीव तकनीकी विज्ञान में क्लोंनिंग द्वारा तैयार किए जाने वाला प्रथम स्तनधारी पशु भेड़ ही था। इसके

दिमाग की संरचना मनुष्य के दिमाग से काफी मिलती–जुलती है। यही कारण है कि कई कठिन प्रयोग जो मनुष्य के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं, सर्वप्रथम भेड़ में किए जाते हैं। मानव मस्तिष्क की जटिलताओं को सुलझाने के लिए भेड़ एक महत्वपूर्ण रूपक सिद्ध हो सकती है। भविष्य में ऐसे कई अवसर आयेंगे जब भेड़ मनुष्य की समस्याओं को सुलझाने के लिए अपना बलिदान देने में हमेशा तत्पर रहेगी। भारत के शुष्क, अर्धशुष्क एवं पर्वतीय क्षेत्रों में सदियों से कृषकों की जीविका का मुख्य आधार भेड़ पालन ही रहा है। भेड़ का छोटा आकार, शारीरिक आवश्यकता तथा बहुपयोगी होना, पशुधन में विशेष महत्व रखता है। देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भेड़–बकरी का उल्लेखनीय योगदान है क्योंकि इन पशुओं से निर्धन किसान जुड़े हुए है। खेती के साथ–साथ भेड़–बकरी पालन न केवल आर्थिक रूप से लाभदायक हैं बल्कि अच्छा पर्यावरण बनाए रखने में भी सहायक है। अनुपजाऊ एवं बंजर भूमि या घास–पत्ती को भेड़ों से ज्यादा कोई और पशु काम में नहीं ला सकता।

परम्परागत रूप से पशुओं का भरण–पोषण एवं प्रबंधन स्वयं या परिवार की महिलाओं एवं बच्चों द्वारा सामुदायिक चरागाहों पर, वनभूमि और फसलों की कटाई के बाद बचे अवशेषों की चराई करके किया जाता है। इसके अलावा भेड़–बकरी पालक अपने पशुओं को चारे की कमी के समय पेड़ों व झाड़ी से पत्तियाँ काटकर खिलाते हैं। स्थानीय रूप से उपलब्ध समस्त चारा संसाधनों का दोहन करने के बावजूद देश के पश्चिमी क्षेत्रों के पशुपालक कम और लम्बी दूरी यहॉ तक कि पड़ोसी राज्यों में भी अपने पशुओं के साथ विषम परिस्थितियों जैसे ग्रीष्मकाल में निष्क्रमण करते हैं और अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर वे वापस अपने घर लौटते हैं। इसी प्रकार हिमालय की पहाड़ियों के तलहटी में रहने वाले गद्दी और बकरवाल अपने पशुओं के साथ ग्रीष्मकाल में सघन चरागाहों वाले क्षेत्रों में निष्क्रमण करते हैं और परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर अपने मूल क्षेत्रों में वापस आ जाते हैं। विदेशी भेड़ों से 4–5 किलोग्राम तक ऊन प्राप्त होती है जबकि भारतीय भेड़ों से प्रतिवर्ष लगभग 1–1.5 किलोग्राम ऊन प्राप्त होती है। भेड़ मुख्य रूप से ऊन और मांस के लिए पाली जाती है। यद्यपि इनसे दूध और खाद भी प्राप्त होता हैं। अच्छी ऊन से गाँव में ऊन व्यवसाय से जुडे लोगों के रहन सहन के स्तर में सुधार होता है तथा उनको वर्ष भर रोजगार प्राप्त होता है। परन्तु यह बात सत्य है कि भेड़पालक को अधिक आमदनी मांस से होती है। भेड़ पालक के लिए भेड़ें चलते–फिरते बैंक स्वरूप होती है, जब कभी उसे पैसे की आवश्यकता होती है तो वह भेड़ों को बेचकर अपने परिवार की जरूरत की चीजें खरीद लेता है। बाजार में जो मांस बिकता है वह अनुत्पादक भेड़ों या नर मेमनों से मिलता है, जिन्हे 4 माह से एक वर्ष तक की उम्र पर कभी भी बेचा जा सकता है। देशी मेमनों का 5–6 माह की आयु पर 15–20 किग्रा. शरीर भार होता है जबकि इनका पालन पोषण गॉवों के आस–पास अविकसित चरागाहों पर किया जाता है तथा उनको किसी प्रकार का अतिरिक्त चारा व दाना नहीं दिया जाता। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि देशी मेमनों की सघन खिलाई करके कम समय में अधिक शारीरिक भार और उत्तम मांस प्राप्त किया जा सकता है।

**भेड़ों की जनसंख्या एवं आर्थिक योगदान**

भारत एक कृषि प्रधान देश है। आर्थिक ऑकलन से यह पाया गया है कि कृषि एवं कृषि पूरक व्यवसाय देश में 48.9% रोजगार दिलाते हैं। देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में पशुपालन 4.1% से ज्यादा योगदान देता है जिसका अर्थ हैं कृषि का सकल विकास दर GDP में 14.5% योगदान। भेड़ पालन पशुपालन का महत्वपूर्ण व्यवसाय हैं जो विकट परिस्थितियों जैसे फसल के नश्ट होने की परिस्थितियों में एक सफल जीवन रेखा का काम करता है। पिछले कई वर्षों में फसल विफलता से आंध्र प्रदेश के किसानों की आत्महत्या के दुःखद परिणामों के बाद देखा गया है कि आज वहॉ भेड़ पालन जीवनरेखा के तौर पर अपनाया जाने लगा है जिसके चलते आत्महत्या जैसी घृणित घटनाओं को रोका जा सका है।

भारत में भेड़ों की संख्या लगभग 7.4 करोड़ है तथा विश्व में इसका तीसरा स्थान है। सन् 1951 में भेड़ों की संख्या 3.

91 करोड़ थी। इन 61 वर्षो में भेड़ों की जनसंख्या में 66.24 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। देश की इन भेड़ों द्वारा 441.0 मिलियन किग्रा. मांस, 46.1 मिलियन किग्रा ऊन एवं 56300 मेट्रिक टन चमड़े का उत्पादन होता है। ऊन से बने उत्पादों की बिक्री से लगभग रू. 30 करोड़ की वार्षिक आय होती है। देश के कुल मांस उत्पादन में भेड़ के मांस की हिस्सेदारी 7 प्रतिशत हैं तथा विदेशों में निर्यात किए जाने वाले मांस में 8 प्रतिशत है। भेड़ और बकरियों की क्रमशः 33 और 37 प्रतिशत की निश्कासन दर से प्रतिवर्ष लगभग 341.6 एवं 876.1 लाख भेड़ एवं बकरियो का वध किया जाता है। प्रति भेड़ एवं बकरी से औसतन 12.97 एवं 10.74 किलोग्राम मांस प्राप्त होता है। प्रत्येक भेड़ से एक वर्ष में औसतन 750 ग्राम ऊन प्राप्त होती है। किन्तु यह आश्चर्यजनक बात है कि किसानों को ऊन की तुलना में खाद या मेंगनी से अधिक आय होती है। प्रति भेड़ प्रति वर्ष लगभग 100 रूपये की खाद की दर से हमें प्रतिवर्ष 6 अरब रू. की खाद केवल भेड़ों से प्राप्त होती है। इसके अलावा भेड़ों से हमें प्रतिवर्ष 2.06 और 0.70 अरब रूपये क्रमशः खाल एवं दूध से प्राप्त होते हैं। भेड़ और बकरियों के उत्पादों से हमें प्रतिवर्ष 28.56 और 96.41 अरब रूपये की आय होती है। यद्यपि सामाजिक अर्थव्यवस्था और ग्रामीण सम्पन्नता के संदर्भ में भेड़–बकरियों का ग्रामीण अर्थव्यवस्था में योगदान को कम ऑका जाता है। जबकि इन पशुओं का छोटा आकार जैवीय और आर्थिक प्रबंधन में सार्थक रूप से सहायक होता है। इसलिए ग्रामीण गरीबों का आर्थिक स्तर सुधारने हेतु भावी पशुधन विकास कार्यक्रमों में भेड़–बकरियों के आशाजनक अवसर प्रतीत होते हैं। सबसे अधिक भेड़ें दक्षिणी क्षेत्र में पायी जाती हैं। भेड़ों की संख्या एवं भेड़ पालन व्यवसाय की दृष्टि से उत्तर पश्चिमी क्षेत्र देश में तीसरा स्थान रखता हैं। इस क्षेत्र में लगभग 2.15 करोड़ भेड़ें पाली जाती हैं जो कुल भेड़ों की संख्या का 42 प्रतिशत है। इनसे लगभग 2.8 करोड़ किग्रा. ऊन का उत्पादन होता हैं। भेड़ पालन में देश में प्रथम स्थान तेलंगाना (25 प्रतिशत), दूसरा स्थान आंध्रप्रदेश (22 प्रतिशत), तीसरा स्थान कर्नाटक (15 प्रतिशत) तथा चौथा स्थान राजस्थान का (10 प्रतिशत) हैं। 2017 की पशु गणना के अनुसार राजस्थान में भेड़ों की संख्या 79,10,000 थी जिसका 99 प्रतिशत भाग गांवों में ही रहता हैं। राज्य में लगभग 2.5 लाख परिवार सीधे ही भेड़ व्यवसाय पर तथा इतनी ही संख्या में इनसे प्राप्त उत्पाद जैसे– ऊन, मांस, चमड़ा के विपणन व उन पर आधारित उद्योगों पर आश्रित है। भेड़ों से राजस्थान में करीब 200 लाख किलों ऊन, 400 लाख किलों मांस व 57 लाख नग चमड़ा मिलता है। राजस्थान में पिछले पाँच सालों में भेड़ों की संख्या में 18.86 प्रतिशत कमी हुई है।

**20वीं पशु जनगणना (2017) के आँकड़ें**

| भेड़ पालन में अव्वल राज्य | | |
|---|---|---|
| **राज्य** | **संख्या ('000)** | **हिस्सा (प्रतिशत)** |
| तेलंगाना | 19.1 | 25.72 |
| आंध्रप्रदेश | 17.6 | 22.97 |
| कर्नाटक | 11.1 | 14.94 |
| राजस्थान | 7.9 | 10.63 |
| तमिलनाडू | 4.5 | 6.05 |
| जम्मू कश्मीर | 3.2 | 4.30 |
| महाराष्ट्र | 2.7 | 3.63 |
| गुजरात | 1.8 | 3.63 |
| अन्य | 6.36 | 8.56 |
| कुल | 74.26 | 100 |

सभी प्रकार की नकारा भेड़–बकरियाँ, नर मेमनों एवं प्रजनन आवश्यकताओं से अधिक मेंढ़ों/बकरों का मांस के उद्देश्य से वध किया जाता है। जिससे प्रतिवर्ष क्रमशः 206 और 475 लाख खालें अंतिम उपयोग हेतु उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त मरे हुए पशुओं से 100 लाख खालें उपलब्ध होती हैं। प्रत्येक खाल की अनुमानित औसत कीमत 100 रूपये मानें तो प्रतिवर्ष लघु रोमन्थी खाल के रूप में सकल घरेलू उत्पाद में 781 करोड़ रू. का योगदान देते हैं। कच्ची खाल के प्रसंस्करण एवं उपयोग के लिए उत्पाद तैयार करने में समाज के काफी लोगों को रोजगार मिलता है।

**BAH&FS (2015) के आँकड़े**

| क्र.स. | राज्य | भेड़ से प्राप्त मांस (million kg) | राज्य | बकरी से प्राप्त मांस (million kg) | राज्य | ऊन (000 kg) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | तेलंगाना | 125.82 (23.78%) | प. बंगाल | 179.31(19.62%) | राजस्थान | 14463.36 (30.00%) |
| 2 | आंध्रप्रदेश | 100.90 (19.07%) | उत्तरप्रदेश | 177.16(19.38%) | कर्नाटक | 8821.44 (18.32%) |
| 3 | प. बंगाल | 90.80 (17.16%) | बिहार | 84.00(9.19%) | जम्मू कश्मीर | 8371.01 (17.38%) |
| 4 | राजस्थान | (7.71%) 40.80 | राजस्थान | 74.49(8.15%) | तेलंगाना | 4422.97 (9.19%) |
| 5 | तमिलनाडू | 38.82 (7.34%) | ओडिसा | 66.38(7.26%) | गुजरात | 2577.41 (5.35%) |
| 6 | कर्नाटक | 35.26 (6.66%) | महाराष्ट्र | 45.76(5.00%) | हिमाचल प्रदेश | 1663.07 (3.45%) |
| 7 | उत्तरप्रदेश | 23.10 (4.37%) | आंध्रप्रदेश | 39.12(4.28%) | उत्तरप्रदेश | 1493.71 (3.10%) |
| INDIA | | 529.08 (100%) | INDIA | 914.13 | INDIA | 48139.88 (100%) |

सन 2014–15 में भारत में भेड़ और बकरी से अनुमानित मांस उत्पादन क्रमश 5290.8 एवं 9141.3 लाख किलोग्राम ऑका गया (BAH & FS 2015)। भारत से भेड़ एव बकरी के मांस का निर्यात 22,608.96 मेट्रिक टन रिकॉर्ड किया गया जिसमें सबसे ज्यादा निर्यात सयुक्त अरब एमिरात, सऊदी अरब एवं कतर देशों में किया गया (APEDA 2014)।

**भारत से भेड़ एवं बकरी माँस निर्यात करने वाले देश**

| श्रेणी | देश | मात्रा (मैट्रिक टन) | कीमत (रू. लाख) |
|---|---|---|---|
| 1 | सयुक्त अरब एमिरात | 10716.17 | 36,093.17 |
| 2 | सऊदी अरब | 5763.36 | 19,609.26 |
| 3 | कतर | 1613.42 | 5,530.78 |
| 4 | पाकिस्तान | 1554.00 | 505.74 |
| 5 | कुवैत | 1150.49 | 3,925.37 |
| 6 | ओमान | 563.39 | 1,686.29 |
| 7 | वियतनाम | 253.00 | 431.8 |
| 8 | बहरीन | 153.64 | 523.05 |
| 9 | सेनेगल | 142.00 | 218.58 |
| 10 | सीरिया | 84.00 | 126.93 |

हमारे देश की भेड़ों व बकरियों की उत्पादकता विकसित देशों की अपेक्षा काफी कम है। उत्पादन क्षमता कम होने का कारण अनियंत्रित प्रजनन और नस्लों का अन्तःमिश्रण, अनुचित रख–रखाव, वर्ष के अधिकांश समय में पोषण का निम्न स्तर, विभिन्न रोगों के बचाव एवं उपचार की कमी, अधिक मृत्युदर, अच्छें चरागाहों की कमी, और उनकी वहन क्षमता की तुलना में पशुधन का अपेक्षाकृत अधिक घनत्व आदि है। भेड़–बकरी पालकों का शोषण करने वाले दलालों को बढ़ावा देने वाली असंगठित विपणन संरचना भी इस व्यवसाय में बाधा उत्पन्न करती है। हमारी भेड़ों के उत्पादन में कई गुणा वृद्धि सम्भव है। उन्नत तकनीकों को अपनाकर हमारे भेड़पालक रेवड़ की उत्पादन क्षमता में आशातीत वृद्धि करके इस व्यवसाय को अधिक लाभदायक बना सकते हैं। किसान भेड़ों में उचित प्रजनन, आहार व्यवस्था, प्रतिकूल वातावरण से बचाव, स्वास्थ्य व्यवस्था, उचित चराई तथा अकाल के समय उचित पशु प्रबन्ध आदि अपनाकर उत्पादन बढ़ा सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप किसान को अधिक आय प्राप्त हो सकती है।

# भेड़ों की प्रमुख नस्लें, पहचान एवं उनका महत्व

**गोपाल आर गोवाने, रमेश चन्द शर्मा, राजीव कुमार, अरूण कुमार**

भारत में भेड़ की लगभग 42 नस्लें मौजूद है जिनका वर्गीकरण क्षेत्रीय आधार, शारीरिक गुणों की विशेषता, उनकी उपयोगिता इत्यादि मापदंडों के आधार पर किया गया है। हमारें देश में भेड़ पालन सूखे व पहाड़ी स्थानों पर ज्यादातर होता है। भेड़ पालन अधिकांश ऐसे लोगों के हाथ में हैं जिनके पास कृषि भूमि नहीं के बराबर या बहुत थोड़ी हैं जो केवल वर्ष के कुछ ही दिनों काम उपलब्ध कराती है। हमारी भेड़ों का ऊन और मांस उत्पादन विदेशी भेड़ो की अपेक्षा काफी कम है। इस कम उत्पादन क्षमता का मुख्य कारण उनका अनुचित प्रजनन एवं प्रबंध, अपर्याप्त और असंतुलित भोजन सामग्री और चिकित्सा सुविधाओं की कमी है। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि हमारी भेड़ों के उत्पादन में कई गुणा वृद्धि संभव है।

**भारत में पायी जाने वाली भेड़ों की नस्लें**

| क्षेत्र | नस्ल |
|---|---|
| उत्तर का ठंडा क्षेत्र | गद्दी, रामपुर बुशेर, भकरवाल, पूँछी, करनाह, गुरेज, कश्मीर मेरिनो, चाँगथाँगी। |
| उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र | चोकला, नाली, मारवाडी, जैसलमेरी, पूगल, मालपुरा, सोनाडी, पाटनवाडी, मुजफ्फरनगरी, जालौनी, हिसारडेल। |
| दक्षिणी क्षेत्र | दक्कनी, नेलौर, बेलारी, हासन, मेचेरी, किलाकरसल, वेम्बूर, कोयम्बटूर, नीलगिरि, रामनाद–व्हाइट, मद्रास रेड, त्रिचि ब्लैक, केंगयूरी। |
| पूर्वोत्तर क्षेत्र | छोटा नागपुरी, शाहाबादी, बालांगिर, गंजम, तिब्बतन, बोनपाला। |

**भेड़ की विशिष्ट नस्लें एवं उनके गुण**

| नस्ल | विशेषता |
|---|---|
| मगरा | चमकीली किस्म के ऊन का उत्पादन |
| चाँगथांगी | ऊँचे पर्वतों की मुलायम ऊन वाली नस्ल |
| गैरोल | सुन्दरबन क्षेत्र की उच्च जनन क्षमता वाली नस्ल |
| मारवाड़ी, जैसलमेरी एवं चोकला | कठिन जलवायु में पाई जाने वाली सहनशील नस्ल |
| पाटनवाडी एवं चोकला | सर्वोत्तम कालीन ऊन उत्पादक नस्ल |

**विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में पाई जाने वाली भेड़ों की ऊन एवं रेशे की विशेषताएं**

| क्षेत्र | ऊन/रेशे की लम्बाई (सें0मी0) | ऊन/रेशे का व्यास (माइक्रॉन) | मेडुलेशन (प्रतिशत) |
|---|---|---|---|
| उत्तर का ठंडा क्षेत्र | 5–11 | 24–35 | 5–18 |
| उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र | 3–9 | 28–52 | 16–85 |
| दक्षिणी क्षेत्र | 6.11–6.95 | 26.88–55.00 | 10–65 |
| पूर्वी क्षेत्र | 4.60–4.70 | 66.40–66.66 | 88.00–90.00 |

### उत्तर पर्वतीय क्षेत्र की भेड़ नस्लें

हमारे देश के उत्तरी भाग के पर्वतीय अंचल इस क्षेत्र में आते हैं, इनमें प्रमुख हैं जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र। उत्तम कोटि की ऊन उत्पादन करने वाली लगभग 10 भेड़ की नस्लें इस क्षेत्र में पाई जाती है। पर्वतीय अंचल में होने के कारण जाड़ों में यहाँ का तापमान काफी नीचे गिर जाता है। ज्यादातर रेवड़ का पालन इस क्षेत्र के गड़रिये ही करते हैं जो कि जाड़े के समय अपने रेवड़ को तलहटी में लाकर चराते हैं व जाड़ा कम हो जाने पर पर्वत के ऊपरी भागों में चराई करते हैं। कृषि की सीमित संभावना के चलते इस क्षेत्र में भेड़ पालन आय का एक प्रमुख स्रोत है। रामपुर बुशेर, गद्दी, करनाह, पूंछी एवं भकरवाल इस क्षेत्र की प्रमुख नस्लें हैं।

### गद्दी

भेड़ की यह नस्ल देश के उत्तरी पर्वतीय अंचल के काफी फैले भू–भाग पर पाई जाती है इनमें जम्मू प्रदेश की भदरवाह व किश्तवार तहसील, जम्मू एवं कश्मीर के रामनगर और ऊधमपुर, हिमाचल प्रदेश की कुल्लू एवं काँगड़ा घाटियां तथा उत्तराखण्ड के देहरादून, नैनीताल, टिहरी गढ़वाल तथा चमोली जिले प्रमुख है। यह एक मजबूत गठन वाली मध्यम आकर की नस्ल है, जिसका रंग मुख्य रूप से सफेद होता है। कभी–कभी ये काले, भूरे व लाल रंग के मिश्रण में भी पाई जाती है। नरों में सींग पाया जाता है। मादा प्रायः सींग रहित होती है। केवल 10–15 प्रतिशत मादाओं में सींग होता है इसकी पूँछ पतली एवं छोटी तथा कान भी छोटे आकार के होते हैं। इसका ऊन अपेक्षाकृत मोटा होता है, लेकिन संकरण प्रक्रिया द्वारा इसमें सुधार की प्रबल संभावनाएं हैं। एक वर्ष में एक भेड़ से लगभग 1.5 कि0ग्रा0 तक ऊन मिल जाती है। गठन चुस्त रहने के कारण यह अच्छी मात्रा में माँस उत्पादन करती है।

### रामपुर–बुशेर

भेड़ की यह नस्ल हिमाचल प्रदेश के शिमला, किन्नौर, नाहन, बिलासपुर, सोलन, लाहुल एवं स्पीति जिलों में तथा उत्तराखण्ड के देहरादून, ऋषिकेश, चकराता एवं नैनीताल जिलों में पायी जाती है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है, जिसका रंग मुख्यतय सफेद होता है। कभी–कभी इनके शरीर पर भूरे, काले व लाल रंग के धब्बे भी पाये जाते हैं। इनकी नाक रोमनी होती है तथा चेहरे पर भूरे या हल्के काले धब्बे पाये जाते हैं। नरों में सींग होता है जबकि मादा प्रायः सींग रहित होती है। वयस्क नर का शारीरिक भार 40–45 कि0ग्रा0 व मादा का भार 35–40 कि0ग्रा0 तक होता है। इनकी ऊन उम्दा किस्म की होती है जिसका पर्वतीय क्षेत्र के कुटीर उद्योगों में व्यापक उपयोग होता है। एक भेड़ से एक वर्ष में लगभग 1 कि0ग्रा0 तक ऊन मिल जाती है।

### भकरवाल

इस नस्ल का नाम उस घुमन्तु जनजाति से लिया गया है जो कि इन्हें पालती है। यह उत्तर के पर्वतीय क्षेत्रों में मिलती है, इसका कोई नामित मूल क्षेत्र नहीं है क्योंकि ये भेड़ें घुमन्तु हैं तथा इनका बराबर स्थान परिवर्तन होता रहता है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है तथा पर्वतीय क्षेत्रों के कठिन वातावरण में खूब वृद्धि करती है। इसकी नाक रोमनी होती है तथा कान बड़े, चौड़े व नीचे की ओर लटकते रहते हैं। इनके नरों में सींग पाया जाता है तथा मादा प्रायः सींग रहित होती है। इनके रंग में भिन्नता पाई जाती है किन्तु जम्मू की कैकवा व राजौरी तहसील में इनका रंग सफेद होता है। इनसे प्राप्त ऊन अपेक्षाकृत मोटी तथा खुरदरी होती है जिसका उपयोग कालीन बनाने में किया जाता है।

### पूँछी

भेड की यह नस्ल जम्मू के रजौरी जिले में पाई जाती है। यह नस्ल गद्दी नस्ल से मिलती–जुलती है किन्तु यह गद्दी की अपेक्षा छोटे कद की होती है। इसका कान मध्यम आकार का तथा पूँछ पतली व छोटी होती है। टाँगें छोटी होने के कारण यह देखने में दूर से ही छोटी लगती है। इसका रंग सफेद होता है। कभी–कभी इसके शरीर पर भूरे तथा हल्के काले धब्बे भी पाये जाते हैं। इससे प्राप्त ऊन महीन व मुलायम होती है।

### करनाह

भेड़ की यह नस्ल जम्मू के पर्वतीय तहसील करनाह एवं कश्मीर के उत्तरी भाग में पायी जाती है। यह एक बड़े आकार की नस्ल है। इनकी नाक उभरी हुई होती हे। नरों में मुड़े सींग पाये जाते हैं। इनके ऊन का रंग सामान्यतय सफेद होता है जोकि गुण में मुलायम व महीन होती है। एक वर्ष में एक भेड़ से लगभग 2.30 कि0ग्रा0 तक ऊन प्राप्त होती है।

### गुरेज

भेड़ की यह नस्ल कश्मीर के उत्तरी भाग के गुरेज क्षेत्र में पाई जाती है। जम्मू एवं कश्मीर में पाई जाने वाली नस्लों में यह सबसे बड़ी नस्ल है। इनकी पूँछ छोटी एवं चौड़ी होती है तथा कान लम्बे, पतले व नुकीले होते हैं। नर व मादा प्रायः सींगरहित होते हैं। कभी–कभी इनमें छोटे व नुकीले सींग पाये जाते हैं। यह दूध भी अच्छी मात्रा में देती है। एक वर्ष में एक भेड़ से लगभग 1 कि0ग्रा0 तक ऊन का उत्पादन होता है जोकि बारीक व मुलायम होती है।

### चाँगथाँगी

भेड़ की यह नस्ल लद्दाख क्षेत्र के चाँगथाँग क्षेत्र में पाई जाती है। इस नस्ल की भेड़ मजबूत कद काठी की होती है। इनका रंग सामान्यतया सफेद होता है। इनके शरीर पर बारीक तथा मुलायम ऊन होती है, जिसका रेशा काफी बड़ा होता है। उत्तम ऊन के गुणों वाली इस नस्ल के विकास पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे दुर्गम पर्वतीय अंचल में इनसे अधिक उत्पादन लिया जा सके।

### कश्मीर मेरिनो

भेड़ की यह नस्ल मुख्यतः जम्मू एवं कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है। पर्वतीय क्षेत्र की गद्दी, भकरवाल व पूँछी नस्लों को आस्ट्रेलियन मेरीनो द्वारा संकरित कराकर इस नस्ल को विकसित किया गया है। इसके संकरण को दूसरी पीढ़ी तक सीमित रखा गया तथा फार्म पर मेढ़ों/भेड़ का चयन उनके शारीरिक भार, ऊन उत्पादन एवं ऊन की गुणवत्ता के आधार पर किया गया है। इसके फलस्वरूप समान गुणधर्म रखने वाले पशुओं का बड़ी संख्या में विकास सम्भव हो पाया। यह उत्तम गुण वाली ऊन उत्पन्न करने वाली भेड़ की प्रमुख नस्ल है जोकि कश्मीर के विभिन्न हिस्सों में पाई जाती है। वयस्क नर का शारीरिक भार 53.6 कि0ग्रा0 तथा मादा का भार 47.7 कि0ग्रा0 तक पाया जाता है। एक वर्ष में एक भेड़ से 3.50 कि0ग्रा0 तक ऊन का उत्पादन होता है। जिसके रेशे की लम्बाई लगभग 5.5 सें0मी0 व व्यास 19.7 माइक्रॉन तक होता है। इस नस्ल का प्रयोग राज्य की देशी भेड़ों को सुधारने में भी किया जाता है।

### उत्तर पश्चिमी शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र की भेड़ की नस्लें

यह क्षेत्र देश के उत्तर पश्चिमी प्रदेशों को संगठित करता है। इस क्षेत्र के मुख्य राज्यों में राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा गुजरात के मैदानी भाग आते है। यह क्षेत्र शुष्क से अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों मे पाई जाने वाली

घासों, झाड़ियों, चारा एवं वृक्षों से भरा हुआ है। इन वनस्पतियों में मुख्य रूप से खेजड़ी, अरडू, नीम, बबूल, कीकर, बरगद, बेरी, झड़बेरी आदि वृक्षों की अधिकता है। इस क्षेत्र की प्रमुख नस्लें मालपुरा, मगरा, चोकला, नाली, जैसलमेरी, पूगल, सोनाड़ी, मारवाड़ी, जालौनी, खेरी, मुजफ्फनगरी, एवं पाटनवाड़ी आदि है।

**मालपुरा**

इस नस्ल की भेड़ का नाम राजस्थान के टोंक जिले की मालपुरा तहसील के नाम पर पड़ा है। यह मुख्य रूप से मांस उत्पादक नस्ल हैं जिसकी ऊन मोटी किस्म की होती है। मालपुरा नस्ल की भेड़े मुख्य रूप से जयपुर, टोंक एवं अजमेर जिलों में पाई जाती है। इस नस्ल के पशुओं का चेहरा हल्के भूरे रंग का होता है। इनके कान छोटे व मुड़े हुए तथा पूँछ पतली और मध्यम लम्बाई की होती है। नर व मादा दोनों सींग रहित होते है। इनके पेट, मुंह व टागों पर ऊन नहीं होती। वयस्क नर का शारीरिक भार 33–40 तथा मादा का 24–30 कि.ग्रा. होता है। बच्चों का औसतन जन्म भार 2.6–3.5 कि.ग्रा. होता है। वयस्क नर की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 68–74 तथा 67–72 सेमी तक होती है तथा मादा की 61–65 तथा 60–64 सेमी तक होती है। इस नस्ल के नर व मादा क्रमशः 18 व 14 माह की आयु पर प्रजनन योग्य हो जाते है। इन भेड़ों से उत्पन्न ऊन सफेद व अधिक मोटी किस्म की होती है। इन भेड़ों से प्रतिवर्ष लगभग 1.2–1.6 किग्रा. ऊन प्राप्त होती है। इनकी मादाओं में दूध की मात्रा अच्छी होती हैं जिससे अपने बच्चों का ठीक से पालन कर लेती है। इनके नर बच्चों को मांस के लिए पाला जाता है तथा सघन खिलाई से 6 माह की आयु पर इनका औसतन शरीर भार लगभग 30 कि.ग्रा. तक हो जाता है।

**मगरा**

इस नस्ल को बीकानेरी, बीकानेरी चोकला तथा चाकरी के नाम से भी जाना जाता है। इस नस्ल की भेड़ें मुख्य रूप से राजस्थान के बीकानेर, जैसलमेर, नागौर एवं चूरू जिलों में पाई जाती है। इनका चेहरा सफेद रंग का तथा आंखों की गोलाई पर हल्के भूरे रंग के धब्बे होते हैं जो इस नस्ल की मुख्य पहचान है। इन भेड़ों के कान मध्यम लंबाई के तथा मुड़े हुए होते है। इन भेड़ों की टांगे मध्यम लंबाई की तथा खुर सख्त एवं सफेद रंग के होते है। इस नस्ल के वयस्क नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 20–23 तथा 18–20 कि.ग्रा. होता है जबकि परिपक्व नर व मादा का भार 34–36 तथा 27–30 कि.ग्रा. तक पहुँच जाता है। वयस्क नर की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 62–68 तथा 62–54 सेमी तक होती है तथा मादा की 62–66 तथा 60–62 सेमी तक होती है। बच्चों का औसतन जन्म भार 2.9–2.6 कि. ग्रा. होता है। इस नस्ल के नर व मादा क्रमशः 18 व 20 माह की आयु पर प्रजनन योग्य हो जाते है। मगरा से प्राप्त ऊन विश्व में गलीचे निर्माण के लिए उत्तम मानी जाती है। इन भेड़ों से प्रतिवर्ष लगभग 1.8–2.3 कि.ग्रा. ऊन प्राप्त होती है। इनसे प्राप्त ऊन मध्यम श्रेणी की, चमकदार व सफेद रंग की होती है। साधारणतया इन भेड़ों से वर्ष में तीन बार ऊन काटी जाती है।

**चोकला**

यह नस्ल छापर एवं शेखावटी के नाम से भी जानी जाती है। इस नस्ल की भेड़ें मुख्य रूप से राजस्थान के शेखावटी इलाके जिसमें चुरू, झुंझूनू, सीकर, नागौर तथा बीकानेर एवं जयपुर जिलों के रेगिस्तानी क्षेत्रों में पाई जाती है। इस नस्ल के पशु साधारणतया मध्यम एवं वर्गाकार होते हैं। इन भेड़ों का मुँह गहरे भूरे रंग का होता है जो कि सिर तथा नीचे आधी गर्दन तक फैला रहता है। इनके कान छोटे व मुड़े हुए तथा पूँछ पतली और मध्यम लम्बाई की होती है। नर व मादा दोनों सींग रहित होते है। इस नस्ल के वयस्क नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 30–40 तथा 22–32 कि.ग्रा. होता है। इन भेड़ों की लम्बाई व ऊँचाई समान होती है जिससें पशु वर्गाकार दिखाई देता है। नर पशु की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 65–70 तथा

58–62 सेमी तक होती है। बच्चों का औसतन जन्म भार 2.2–2.8 कि.ग्रा. होता है। मादाओं की दूध की मात्रा कम होती हैं जिसके कारण मेमने कमजोर तथा छोटे कद के होते है। इस नस्ल को राजस्थान की मेरिनों कहा जाता हैं क्योंकि अन्य राजस्थानी भेड़ों की तुलना में इस नस्ल की ऊन सर्वाधिक मुलायम एवं बारीक होती है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 2–2.5 किग्रा. ऊन प्राप्त होती है।

**मारवाड़ी**

राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में अधिकता में पाई जाने वाली भेड़ की नस्ल को मारवाड़ी कहा जाता है। मारवाड़ी नस्ल राजस्थान की कुल भेड़ संख्या का 40 प्रतिशत है। यह भेड़ मुख्य रूप से जोधपुर, पाली, नागौर, जालोर, बाड़मेर तथा सिरोही में पाई जाती है। इस नस्ल के पशु मध्यम आकार के होते हैं। इन भेड़ों के मुँह का रंग काला होता है तथा गर्दन के निचले भाग तक फैला रहता है। इन भेड़ो के कान काफी छोटे तथा अंदर की तरफ मुडे हुए होते है। नर एवं मादा सींग रहित होते है। इनकी पूँछ पतली और मध्यम लम्बाई की होती है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 28–35 तथा 25–30 कि.ग्रा. होता है। नर पशु की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 68–74 तथा 58–64 सेमी तक होती है जब कि मादा की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 66–70तथा 56–60 सेमी होती है। इस नस्ल की भेड़ों का शरीर सुगठित एवं मजबूत तथा इनकी टांगे लम्बी व मजबूत होती है जिसके कारण ये भेड़ें दूसरी नस्ल की भेड़ों की तुलना में अधिक दूरी चलने में सक्षम होती है। इस नस्ल के नर व मादा क्रमशः 14 व 18 माह की आयु पर प्रजनन योग्य हो जाते है। भेंड़े एक बार में एक ही मेमनें को जन्म देती है। मेमनों का जन्म भार 2.7–3.2 कि.ग्रा. होता है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 1.5–2.3 कि.ग्रा. सफेद व अधिक मोटी श्रेणी की ऊन प्राप्त होती है।

**नाली**

इस नस्ल की भेड़े राजस्थान के गंगानगर, चुरू तथा झुन्झुनू और हरियाणा के हिसार व रोहतक जिलों के दक्षिणी भागों में पाई जाती है। यह नाली क्षेत्र कहा जाता हैं क्योंकि यहाँ का धरातल नीचा है। यह मध्यम से बड़े आकार की नस्ल हैं जिसका शरीर मजबूत होता है। इन भेड़ों का मुँह हल्का भूरे रंग का तथा खाल का रंग गुलाबी होता है। इन भेड़ो के कान लम्बे व पत्तीनुमा होते है। दोनों लिंग सींग रहित होते है तथा टांगे छोटी तथा खुर पीले रंग के होते है। इनकी पूँछ पतली व लंबाई मे मोटी होती है। इन भेड़ों के शरीर का सर्वाधिक भाग ऊन से ढ़का रहता है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 35–40 तथा 25–30 कि.ग्रा. होता है। नर पशु की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 65–67 सेमी तक होती है जबकि मादा की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 64–66 सेमी होती है। मेमनों का जन्म भार 2.6–3.4 कि.ग्रा. होता है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 2–3.5 कि.ग्रा. सफेद व मध्यम से निम्न (खुरदरी) किस्म की ऊन प्राप्त होती है।

**सोनाड़ी**

इस नस्ल की भेड़े राजस्थान के उदयपुर, डूंगरपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ तथा गुजरात के उत्तरी भागों में पाई जाती है। इस नस्ल की भेड़ों का शरीर लम्बा, सुदृढ़, ऊँचा तथा गर्दन लम्बी होती है। इनका चेहरा सफेद या गले तक हल्के भूरें रंग का होता है। इन पशुओं के कान लम्बे तथा लटेकते हुए होते है, जो चरते समय धरती पर रेंगते है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 34–40 तथा 26–30 कि.ग्रा. होता है। नर पशु की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 66–70 तथा 68–71 सेमी तक होती है जबकि मादा की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 58–62 तथा 60–62 सेमी होती है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 0.8–1.3 कि.ग्रा. सफेद व निम्न श्रेणी (खुरदरी) किस्म की ऊन प्राप्त होती है। राजस्थान की यह भेड़ अन्य नस्ल की भेड़ों से

अधिक दुधारू है। भेड़ें प्रतिदिन लगभग 1.0–1.5 कि.ग्रा. दूध देती हैं तथा दूध में अधिक वसा होता हैं जिससे इनके मेमनें शीघ्र बड़े होते है।

**पूगल**

इस नस्ल का उद्‌भव राजस्थान के बीकानेर जिले के पूगल क्षेत्र में हुआ जिसके नाम पर इसका नाम पूगल रखा गया। पूगल क्षेत्र से यह नस्ल पूरे बीकानेर एवं जैसलमेर जिलों में फैल गयी। कुछ संख्या में यह नस्ल नागौर तथा जोधपुर में भी पाई जाती है। इस नस्ल की भेड़ों की शारीरिक बनावट सुदृढ़ एवं कद मध्यम होता है। इनका चेहरा काला तथा जबड़े का रंग भूरा होता हैं जो कि नीचे गर्दन तक फैला रहता है। इस नस्ल की भेड़ो के नाक के दोनो ओर से आँखों के ऊपर तक भूरी धारियों का घेरा होता है जो इस नस्ल की मुख्य पहचान है। इनके कान छोटे, पूँछ पतली एवं मध्यम से छोटी लंबाई की होती है। पशुओं की टांगे मध्यम लंबाई की तथा खुर काले रंग के होते है। इनकी त्वचा का रंग सफेद होता है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 30–34 तथा 25–30 कि.ग्रा. होता है। नर पशु की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 66–70 तथा 62–66 सेमी तक होती है जबकि मादा की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 62–67 तथा 60–64 सेमी होती है। इस नस्ल के नर व मादा क्रमशः 15 व 18 माह की आयु पर प्रजनन योग्य हो जाते है। भेंड़े एक बार में एक ही मेमनें को जन्म देती है। मेमनों का जन्म भार 2.4–3.0 कि.ग्रा. होता है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 1.5–2.2 कि.ग्रा. मध्यम श्रेणी की तथा सफेद रंग की ऊन प्राप्त होती है।

**जैसलमेरी**

इस नस्ल का नाम राजस्थान के जैसलमेर जिले के नाम पर रखा गया हैं जो कि इस नस्ल का जन्म स्थान है। यह नस्ल जैसलमेर के अलावा जोधपुर तथा बाड़मेर जिलों की पश्चिमी सीमाओं पर भी पाई जाती है। राजस्थान की अन्य सभी भेड़ नस्लों से यह अधिक बड़े आकार की होती है। इनकी शारीरिक बनावट सुदृढ़ हष्टपुष्ट एवं वर्गाकार होती है। इन पशुओं का सिर कुछ बड़ा तथा नाक रोमन प्रकार की होती है तथा इनका चेहरा काला अथवा गहरे भूरे रंग का होता है और यह गर्दन के नीचे आधे भाग तक फैला रहता है। इनके कान लम्बे व खम्बदार लटके हुए होते है। इन भेड़ों के सींग नही होते है तथा पूंछ मध्यम से लम्बे आकार की होती है जिसकी लम्बाई लगभग 28 सेमी होती है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 32–45 तथा 30–36 कि.ग्रा. होता है। नर पशु की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 68–55 तथा 66–91 सेमी तक होती है जबकि मादा की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 67–66 तथा 66–43 सेमी होती है। इस नस्ल के नर व मादा क्रमशः 16 व 20 माह की आयु पर प्रजनन योग्य हो जाते है। भेंड़े एक बार में एक ही मेमनें को जन्म देती है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 1.8–3.2 कि.ग्रा. मध्यम श्रेणी की तथा सफेद रंग की ऊन प्राप्त होती है। ऊन के तन्तु की लंबाई 6–9 सेमी, व्यास 32–39 माईक्रोन तथा मेडूलेशन 60–70 प्रतिशत होता है।

**खेरी**

भेड़ों की यह नस्ल राजस्थान के भेड़ पालकों द्वारा काले मुँह (मारवाड़ी/जैसलमेरी) भेड़ों के देशी/मालपुरा भेड़ों से निष्क्रमण के दौरान संकरण से उत्पन्न हुई है। भेड़ पालकों के अनुसार इस नस्ल की उत्पत्ति का कारण काले मुंह की भेड़ों में निष्क्रमण क्षमता अधिक होना है। अकाल व चराई के लिए अधिक दूरी तक चलने में इस तरह की भेड़े सक्षम रहती है। इस नस्ल की भेड़ें पाली, जोधपुर, नागौर, अजमेर, टोंक, सवाईमाधोपुर तथा करौली में अधिक पाई जाती हैं। इनका शरीर सुगठित तथा मजबूत होता है। इनके कान लम्बे तथा लटके हुए होते है। इनका चेहरा काले

रंग का होता है। इनकी आँखों के आस–पास काले धब्बे तथा माथें पर सफेद धारियां भी पाई जाती है। इन भेड़ों के सींग नही होते है तथा पूंछ मध्यम से लम्बे आकार की होती है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 35–40 तथा 26–30 कि.ग्रा. होता है। मेमनों का जन्म भार 2.8–3.5 कि.ग्रा. के मध्य होता है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 1.2–1.8 कि.ग्रा. मध्यम श्रेणी की तथा सफेद रंग की ऊन प्राप्त होती है। ऊन के तन्तु की 5–7 सेमी, व्यास 35–40 माईक्रोन तथा मेडूलेशन 60–70 प्रतिशत होता है। इन भेड़ों में मालपुरा नस्ल की अपेक्षा कम दूध होता हैं जिससे इनके मेमने देर से बड़े होते है। मुख्यतः वर्ष में तीन बार ऊन काटी जाती है।

**पाटनवाड़ी**

इस नस्ल को कच्छी, देसी, काठियावाड़ी, चडौतरी तथा वाधीयावाड़ी आदि नामों से भी जाना जाता है। इसका नाम गुजरात के पाटन क्षेत्र पर रखा गया है। यह नस्ल गुजरात के राजकोट, भावनगर, जामनगर, अमरोली तथा कच्छ क्षेत्रों में अधिकता में पाई जाती है। इस नस्ल के पशु कुछ संख्या में मेहसाना, बनासकंठा तथा राजस्थान के दक्षिणी भागों में भी पाये जाते है। यह नस्ल शारीरिक बनावट में सुदृढ़, मजबूत तथा मध्यम से बड़े आकार की होती है। पशु का चेहरा एवं सिर काला तथा गहरे भूरे रंग का होता है जो छोटे–छोटे बालों से ढ़का रहता है। इन पशुओं की नाक बीच में से उठी हुई रोमन आकृति की होती है। इन भेड़ों के सींग नही होते है तथा पूंछ मध्यम से लम्बे आकार की होती है। इस नस्ल की टाँगे लम्बी तथा खुर गहरे रंग के होते है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 30–35 तथा 24–30 कि.ग्रा. होता है। नर पशु की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 58–62 तथा 63–66 सेमी तक होती है जबकि मादा की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 58–60 तथा 59–60 सेमी होती है। भेंड़े एक बार में एक ही मेमनें को जन्म देती है। मेमनों का जन्म भार 2.8–3.2 कि.ग्रा. होता है। ऊन के तन्तु की लम्बाई 6–9 सेमी, व्यास 28–34 माईक्रोन तथा मेडूलेशन 26–30 प्रतिशत होता है। पाटनवाड़ी भेड़ को उसके बड़े आकार एवं अधिक दुग्ध उत्पादन क्षमता के चलते बहुअजता त्रिसंकर भेड़ परियोजना (अविकानगर) में मातृत्व प्रभाव के लिये उपयोग में लिया जा रहा है। अनुसंधान से यह भी पाया गया है कि पाटनवाड़ी (देशी) भेड़ का मातृत्व प्रभाव संकर बहुप्रजता भेड़ में उत्तरजीविता तथा शारीरिक भार वृद्धि में एक महत्वपूर्ण सकारात्मक भूमिका अदा करता है।

**मुंजल**

मुंजल भेड़ों की उत्पत्ति पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान के भेड़ पालकों द्वारा नाली तथा लोही भेड़ों के संकरण करने से हुई है। यह एक मांस उत्पादक नस्ल है। मुंजल भेड़ें हरियाणा के हिसार, अंबाला, करनाल, राजस्थान के गंगानगर तथा पंजाब में पटियाला व भटिंड़ा के आस पास के क्षेत्रों में भी पाई जाती है। यह नस्ल बड़े तथा लम्बे शरीर की होती है। इनका सिर लम्बा तथा नाक रोमन प्रकार की होती है। भेड़ों के चेहरे का रंग हल्का या गहरा भूरा होता है जो कि गर्दन तक फैला रहता है। इस नस्ल के कान लंबे, पत्तीनुमा तथा लटके हुए होते है। इनकी पूँछ लंबी होती है जिसकी औसतन लंबाई 35–40 सेमी होती है। इस नस्ल की टाँगे लम्बी तथा खुर गहरे रंग के होते है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 50–80 तथा 35–55 कि.ग्रा. होता है। नर पशु की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 80–84 तथा 76–80 सेमी तक होती है जबकि मादा की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 72–76 तथा 60–70 सेमी होती है। भेंड़े एक बार में एक ही मेमनें को जन्म देती है तथा 5 प्रतिशत तक जुडवां बच्चे भी देती है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 2.2–3.2 कि.ग्रा. सफेद से हल्के पीले रंग की ऊन प्राप्त होती है। ऊन के तन्तु की लम्बाई 8–11 सेमी, व्यास 48–55 माईक्रोन तथा मेडूलेशन 60–67 प्रतिशत होता है।

**मुज्जफरनगरी**

भेड़ की यह नस्ल बुलंदशहरी के नाम से भी जानी जाती है। इस नस्ल का नाम उत्तर प्रदेश के मुज्जफरनगर जिले के नाम पर रखा गया हैं, जो इसका मूल स्थान है। यह नस्ल मुज्जफरनगर, मेरठ, सहारननुर, बिजनौर, बुलंदशहर तथा उत्तराखण्ड के देहरादून जिले में मुख्य रूप सें पाई जाती है। इसके अलावा यह भेड़ें कम संख्या में दिल्ली तथा हरियाणा में भी पाई जाती है। यह नस्ल मध्यम से बड़े आकार की भारी तथा मांसल शरीर की होती है। इनका रंग सफेद होता हैं लेकिन कुछ पशुओं के कान, चेहरा, गर्दन तथा सिर पर काले तथा भूरे रंग के धब्बे देखने को मिलते है। भेड़ों का सिर बड़ा व कान लंबे तथा लटके हुए होते है। नर व मादा दोनों सींग रहित होते है। नर पशुओं में कभी–कभी रूडीमेन्टरी (अवशेष) सींग निकल आते है। इनकी पूँछ काफी लम्बी होती है जिसकी लम्बाई 50–60 सेमी होती है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 40–50 तथा 32–40 कि.ग्रा. होता है। इनके मेमनों का जन्म भार 3.3–4.5 कि.ग्रा. और एक वर्ष की आयु तक लगभग 34 कि.ग्रा. वजन प्राप्त कर लेते है। ऊन के तन्तु की लम्बाई 3.0–4.5 सेमी, व्यास 42–48 माईक्रोन तथा मेडूलेशन 65–72 प्रतिशत होता है। प्रथम प्रजनक आयु इन पशुओं में 15–18 माह की होती है। इनके मेमनों मे बढ़वार शीघ्र तथा मांस अधिक होता है।

**जालौनी**

इस नस्ल का नाम उत्तर प्रदेश के जालौन जिले के नाम पर पड़ा है जो इसका मूल स्थान है। इस नस्ल की भेड़ मुख्यतः उत्तर प्रदेश के जालौन, ललितपुर एवं झांसी जिलों में पाई जाती है। इन पशुओं का शरीर मध्यम आकार का होता है। इस नस्ल के पशुओं का रंग सफेद होता है तथा मुँह और आँखों के चारों ओर काले या लाल धब्बे भी देखने को मिलते है। नर व मादा सिंग रहित होते है। इनके कान लंबे, चपटे, पत्तीनुमा तथा लटके हुए होते है। इनकी पूंछ की लंबाई लगभग 20–24 सेमी होती है। इस नस्ल के नर एवं मादा का औसत शारीरिक भार 35–40 तथा 26–32 कि.ग्रा. होता है। नर पशु की लम्बाई व ऊँचाई क्रमशः 72 (68–75) तथा 64.5 (62–66) सेमी होती है। इस नस्ल की भेड़ से प्रतिवर्ष 0.9–1.4 कि.ग्रा. निम्न श्रेणी की सफेद ऊन प्राप्त होती है। ऊन के तन्तु की लम्बाई 3–4 सेमी, व्यास 40–45 माईक्रोन तथा मेडूलेशन 75–80 प्रतिशत होता है। मादा प्रतिदिन लगभग 350 ग्राम दूध देती है। इस नस्ल में दो बच्चे देने की क्षमता 5–20 प्रतिशत होती है।

**दक्षिणी क्षेत्र की प्रमुख नस्लें**

इस क्षेत्र में सम्मिलित राज्यों में केरल, तमिलनाडू, कर्नाटक, महाराश्ट्र, आन्ध्र प्रदेश आदि मुख्य है। इस क्षेत्र की प्रमुख नस्लों में बेल्लारी, कोयम्बटूर, दक्कनी, हसन, केंगुरी, किलाकरसल, मद्रास रेड, मान्डया, मचेरी, नेलैर, नीलगिरी, रामानन्द व्हाइट, त्रिचीबलैक एवं बेम्बुर है। इस क्षेत्र की नीलगिरी नस्ल की ऊन उत्तम एवं पतली है, बेल्लरी और कोयम्बटूर माँस एवं ऊन उत्पादन योग्य है और अन्य सभी नस्लें सिर्फ माँस का ही उत्पादन करती है। चूँकि इस क्षेत्र की अधिकांश नस्लें मांस उत्पादन करती है अतः इनका चयन 6 महीने के वजन के आधार पर किया जाता है अधिक वजन वाले नेलौर एवं मांडया के नर से प्रजनन करके नस्ल को सुधारा जा सकता है।

**दक्कनी**

भेड़ की यह नस्ल मूलतः महाराष्ट्र की है लेकिन यह नस्ल आंधप्रदेश तथा कर्नाटक में भी अच्छी संख्या में पायी जाती है। यह मध्यम आकार की नस्ल है। इसका चेहरा पतला व काले रंग का तथा नाक रोमनी होती है। इसके कान मध्यम आकार

के चपटे तथा नीचे की ओर लटके रहते हैं। इसकी पूँछ छोटी (8सें0मी0) होती है। इसका रंग काला होता है जिस पर सफेद धारियाँ पायी जाती हैं। दक्कनी भेड़ की कई अन्य प्रभेद भी इस क्षेत्र में पाई जाती हैं जो उनके रंग एवं स्थान से पहचानी जाती है। इनमें मुख्य है– सोलापुरी, मडग्याल, संगमनेरी, कोल्हापुरी तथा लोनाड़। इस भेड़ का प्रयोग संकर बहुप्रजता भेड़ परियोजना में किया गया था। इसके परिणामस्वरूप नारी–सुवर्णा बहुप्रजनक भेड़ का विकास फलटन के NARI (नारी) संस्था में किया गया। वयस्क नर का शारीरिक भार 35–40 कि0ग्रा0 व मादा 25–30 कि0ग्रा0 तक होती है। एक वर्ष में एक भेड़ से 0.35 कि0ग्रा0 ऊन/क्लिप प्राप्त होता है। यह माँस उत्पादन के लिए भी उपयुक्त पाई गई है।

**नेलौर**

यह नस्ल आंध्र प्रदेश के नेलौर, प्रकाशम तथा ओंगोल जिलें में पाई जाती है। देश में पाई जाने वाली नस्लों में से यह एक ऊँचे कद वाली नस्ल है। इसके तीन प्रभेद मिलते हैंः– (1) सफेद/भूरे रंग में सींग वाली (2) लाल रंग में सींग वाली तथा (3) सींग रहति लाल रंग में। मेढ़ों में सींग होता है किन्तु मादा भेड़ बहुधा सींगरहित मिलती है। इसकी प्रमुख पहचान इसके गले के पास दो कालंगी का होना है जो कि 86 प्रतिशत भेड़ों में पायी जाती है। इसके कान लम्बे व नीचे की ओर गिरे हुए रहते हैं तथा पूँछ पतली व छोटी हाती है। वयस्क नर का शारीरिक भार 36–40 कि0ग्रा व मादा 25–30 कि0ग्रा0 तक होती है। यह प्रमुखतः एक माँस उत्पादक नस्ल है तथा इससे प्राप्त ऊन/रेशा काफी मोटा होता है, जिसका उपयोग सीमित है।

**मान्ड्या**

यह भेड़ मांसोत्पादन के लिये अच्छी मानी जाती है। भेड़ की यह नस्ल कर्नाटक के मान्ड्या जिले में पाई जाती है। इसे बन्नूर के नाम से भी जाना जाता है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है। अधिकांश भेड़ों के गले के पास कालंगी होती है। इसके माथे पर भूरे रंग का धब्बा पाया जाता है जो कि गर्दन व कन्धे तक फैला रहता है। पिछले पुठ्ठे से आगे गर्दन तक इनका शरीर यू आकार में गठित होता है। इनके कान लम्बे, पत्ती के आकार वाले व नीचे की ओर गिरे हुए होते हैं। इनकी नाक रोमनी व पूँछ पतली एवं छोटी होती है। वयस्क नर का शारीरिक भार 35–40 कि0ग्रा0 व मादा 28–30 कि0ग्रा0 तक भार की होती है। इसकी ऊन का रंग सफेद होता है जो कि काफी मोटा होता है। इसमें बालों का प्रतिशत अधिक होता है। अधिकांशतः यह माँस उत्पादन हेतु पाली जाती है। इसका मांस उत्तम गुणवत्ता वाला होता है।

**वेल्लारी**

यह नस्ल कर्नाटक राज्य के वैल्लोर जिलें में पायी जाती है। तुगभंद्रा नदी के दक्षिणी हिस्से में इसकी संख्या अधिक है। यह दक्कनी नस्ल से काफी मिलती–जुलती है। इसका आकार मध्यम होता है तथा इसके कान मध्यम आकार के चपटे व नीचे की ओर गिरे हुए होते हैं जिसमें कभी–कभी काले रंग का मिश्रण भी पाया जाता है। कुल संख्या के आधे भाग में भेड़ों में सींग पाया जाता है। मादा भेड़ें बहुधा सींग रहित होती है। वयस्क नर का शारीरिक भार 32–35 कि0ग्रा0 व मादा का वजन 25–28 कि0ग्रा0 तक होता है। यह एक माँस उत्पादक नस्ल है। इससे प्राप्त ऊन काफी मोटी होती है जिसमें बालों का प्रतिशत अधिक होता है। इसका उपयोग सीमित है।

**हासन**

भेड़ की यह नस्ल कर्नाटक के हासन जिले में बहुतायत से मिलती है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है। इसके कान मध्यम व नीचे की ओर लटके हुए रहते हैं। लगभग 39 प्रतिशत भेड़ों में सींग पाया जाता है जबकि मादा प्रायः सींग रहित

होती है। इसकी नाक रोमनी होती है। यह सफेद रंग की होती है जिस पर कभी–कभी हल्के भूरे व काले धब्बे भी पाये जाते हैं। वयस्क नर का शारीरिक भार 23–25 कि0ग्रा0 व मादा 19–22 कि0ग्रा0 तक वजन की होती है। ऊन का रंग सफेद होता है जो कि काफी मोटी होती है। इसके पेट के निचले भाग व टाँगों पर ऊन नहीं पाई जाती है। यह भी एक माँस उत्पादक नस्ल है।

**मेचेरी**

यह नस्ल तमिलनाडु के सेलम व कोयम्बटूर जिलों में पाई जाती है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है। इसका रंग हल्का भूरा होता है। कान मध्यम आकार के व पूँछ पतली व छोटी होती है तथा नर व मादा बहुधा सींग रहित होते हैं। इनका पूरा शरीर छोटे बालों की परत से ढका रहता है जिसे उतारा नहीं जाता है। वयस्क नर का शारीरिक भार 30–35 कि0ग्रा0 व मादा का भार 18–22 कि0ग्रा0 तक होता है। इसका उपयोग माँस उत्पादन हेतु किया जाता है। यह उच्च गुणवत्ता के मांस एवं खाल के लिए प्रसिद्ध है।

**कोयम्बटूर**

भेड़ की यह नस्ल तमिलनाडु के कोयम्बटूर व मदुरै जिलों में पाई जाती है। यह एक मध्यम आकार वाली नस्ल है। इसके शरीर का रंग सफेद होता है और शरीर पर कभी–कभी काले व भूरे धब्बे भी पाये जाते हैं। इसके कान मध्यम आकार वाले ऊपर की ओर मुड़े हुए होते हैं। पूँछ पतली व छोटी होती है। करीब 30 प्रतिशत नर सींग रहित होते हैं। वयस्क नर का शारीरिक भार 20–25 कि0ग्रा0 व मादा का भार 18–20 कि0ग्रा0 तक होता है। शरीर पर मोटी ऊन की परत होती है, जिसमें बालों का प्रतिशत अधिक होता है। एक भेड़ से प्रतिवर्ष करीब 800 ग्राम तक ऊन प्राप्त होती है। इस नस्ल में भार वृद्धि की अच्छी क्षमता है। इसका विकास करके इससे अच्छा माँस उत्पादन किया जा सकता है।

**मद्रास रेड**

यह नस्ल तमिलनाडु के चेन्नई व चिंगलपेट जिलों में पाई जाती है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है जोकि मुख्यतया भूरे रंग की होती है। कभी–कभी यह हल्के व कहीं पर गाढ़ा भूरा रंग लिए हुए होती है। कुछ भेड़ों के माथे पर सफेद निशान भी होते हैं जो कि जाँघों व पेट के निचले हिस्से तक फैले हुए रहते हैं। इनके कान मध्यम आकार के व नीचे की ओर गिरे रहते हैं। पूँछ पतली व छोटी होती है। मेढ़ों में मोटा और मुड़ा हुआ सींग पाया जाता है। मादा भेंड़ें प्राय सींग रहित होती है। इनके वयस्क नर का शारीरिक भार 32–40 कि0ग्रा0 व मादा का भार 20–25 कि0ग्रा0 तक होता है। इनके शरीर पर ऊन नहीं होती है, अतः इसका उपयोग माँस उत्पादन के लिए किया जाता है।

**नीलगिरी**

यह नस्ल तमिलनाडु के कोयम्बटूर व नीलगिरी पर्वत श्रृंखला के क्षेत्रों में पाई जाती है। यह नस्ल 19 वीं शताब्दी में संकरण द्वारा विकसित की गई थी। संकरण हेतु इस क्षेत्र की मोटे ऊन वाली नस्ल को तस्मानिया मेरिनों/सोवियत/साउथडाउन नामक विदेशी नस्लों के संकरणों द्वारा विकसित किया गया। इस नस्ल की भेड़ मध्यम आकार की होती है। इनका रंग सफेद होता है। कभी–कभी चेहरे व शरीर पर भूरे धब्बे भी पाये जाते हैं। इसकी नाक रोमनी होती है तथा कान चौड़े, चपटे और नीचे की ओर गिरे हुए होते हैं। नरों में छोटे सींग पाये जाते हैं जबकि मादा प्रायः सींगरहित होती है। पूँछ पतली एवं मध्यम आकार की होती है। इनका पूरा शरीर महीन ऊन से ढका हुआ होता है। यह दक्षिण भारत की एकमात्र उत्तम ऊन उत्पादन करने वाली नस्ल है। वयस्क नर का औसत शारीरिक भार

25–30 कि0ग्रा0 व मादा का भार 20–25 कि0ग्रा0 तक होता है। इस नस्ल से प्रतिवर्ष औसतन 1.5 कि0ग्रा0 ऊन प्राप्त होती है।

**किलाकरसल**

यह नस्ल तमिलनाडु के रामनाथपुरम, मदुरै, तंजावुर तथा रामनांद जिलों में पाई जाती है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है, जिसका रंग गहरा भूरा होता है। माथे, पेट व पैरों पर काले धब्बे पाये जाते हैं। इसके कान मध्यम आकार के होते हैं तथा पूँछ पतली एवं छोटी होती है। नरों में मुड़े हुए सींग पाये जाते है तथा अधिकांश भेड़ों में कलंगी होती है जो कि गले के दोनों ओर लटकी हुई रहती है। वयस्क नर का शारीरिक भार 25–30 कि0ग्रा0 व मादा का भार 18–22 कि0ग्रा0 तक होता है। शरीर पर ऊन की मात्रा नहीं के बराबर होती है। अतः इस नस्ल का उपयोग माँस उत्पादन हेतु किया जाता है।

**वेम्बुर**

यह नस्ल तमिलनाडु के बेम्बुर, मेलाखरान्डी, नागलपुरम, अच्छनगुलाम नामक गाँवों में पाई जाती है। यह एक बड़े आकार की नस्ल है, जिसका रंग सफेद है। कभी–कभी लाल व भूरे धब्बे भी इसके शरीर पर पाये जाते हैं। इनके कान मध्यम आकार के व नीचे की ओर लटके हुए होते है। पूँछ पतली एवं छोटी होती है। नरों में सींग पाया जाता है जबकि मादा प्रायः सींग रहित होती है। इनके वयस्क नर का औसत शारीरिक भार 34 कि0ग्रा0 व मादा का भार 27 कि0ग्रा0 तक होता है। शरीर पर ऊन की मात्रा नगण्य होती है। यह प्रमुखतः एक माँस उत्पादक नस्ल है।

**केन्गूरी**

यह नस्ल कर्नाटक के रायपुर जिले में पाई जाती है। इनका आकार मध्यम होता है। शरीर का रंग गहरा भूरा होता है। कभी–कभी ये सफेद व काले रंगों में भी मिलती है। इनके नरों में सींग होता है किन्तु मादा सींग रहित होती है। वयस्क नर का औसत शारीरिक भार 32 कि0ग्रा0 व मादा का भार 26 कि0ग्रा0 तक होता है। शरीर पर ऊन नहीं होती है अतः इनको माँस उत्पादन हेतु पाला जाता है।

## पूर्वी क्षेत्र की प्रमुख भेड़ नस्लें

पूर्वी क्षेत्र में मुख्यतः बिहार, प0 बंगाल, उड़ीसा, असम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैण्ड व सिक्किम राज्य आते हैं। यहाँ की जलवायु गर्म तथा आर्द्र है, किन्तु पूर्वोत्तर के पहाड़ी अंचलों में जलवायु समशीतोष्ण व आर्द्र होती है। इस क्षेत्र में भेड़ की करीब 6–7 नस्लें पायी जाती है। शाहाबादी, गंजम, गैरोल व बोनपाला आदि क्षेत्र की प्रमुख नस्ले हैं।

**भााहाबादी**

भेड़ की यह नस्ल बिहार राज्य के शाहाबाद, पटना व गया जिलों में पाई जाती है। यह एक मध्यम आकार की तथा पतली टाँगों वाली नस्ल है। इनका रंग सफेद होता है तथा इनके चेहरे पर काले या भूरे रंग के धब्बे पाये जाते हैं। इनकी नाक रोमनी व कान मध्यम आकार के तथा नीचे की ओर लटके रहते हैं। इनकी पूँछ पतली व काफी लम्बी (40सेमी) होती है। नर व मादा सींग रहित होते हैं। वयस्क नर का शारीरिक भार 25–30 कि0ग्रा0 व मादा का भार 20–25 कि0ग्रा0 तक होता है। इनके शरीर पर पाई जाने वाली ऊन काफी मोटी किस्म की होती है। एक वर्ष में एक

भेड़ से लगभग 0.25 कि0ग्रा0 तक मोटी ऊन प्राप्त हो जाती है। यह प्रमुखतः एक माँस उत्पादक नस्ल है किन्तु इसके ऊन से कालीन भी बनाए जाते हैं।

**बलान्गीर**

भेड़ की यह नस्ल उड़ीसा के पश्चिमोत्तर जिलों बलान्गीर, सँभलपुर व सुन्दरगढ़ में पायी जाती है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है। इनका रंग सफेद या हल्का भूरा होता है। कभी–कभी यह मिश्रित रंगों में भी मिलती है। इसके कान छोटे व नलिकाकार होते हैं। पूँछ पतली व मध्यम आकार की होती है। यह एक मोटी/कालीन ऊन उत्पादक नस्ल है तथा यह माँस हेतु भी पाली जाती है।

**गंजम**

यह नस्ल उड़ीसा में कोरापुत, फूलबनी व पुरी जिलों में पाई जाती है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है, जिसका रंग भूरा या गहरा लाल होता है। कुछ भेड़ों के चेहरे व शरीर पर सफेद धब्बे भी पाये जाते हैं। इनके कान मध्यम आकार के व नीचे की ओर गिरे रहते हैं तथा नाक उभरी हुई होती है। पूँछ पतली व मध्यम आकार की होती है। इनके नरों में सींग पाये जाते हैं जबकि मादा प्रायः सींग रहित होती है। इनके शरीर पर पाये जाने वाले ऊन में बाल का प्रतिशत अधिक होता है, अतः इसका ज्यादातर उपयोग माँस उत्पादन में होता है।

**छोटा नागपुरी**

यह नस्ल बिहार के छोटा नागपुर जनजातीय क्षेत्र में पायी जाती है। यह एक छोटे आकार की नस्ल है। इसकी गर्दन लम्बी तथा टाँगे छोटी होती है। कान व पूँछ भी छोटे आकार के होते हैं। इसके शरीर का रंग पीलापन लिए हुए सफेद या हल्का धूसर होता है। यह एक माँस उत्पादक नस्ल है।

**बोनपाला**

यह नस्ल सिक्किम के दक्षिणी भाग में पाई जाती है। यह एक बड़े आकार व मजबूत गठन वाली नस्ल है। इसके कान छोटे व नलिकाकार होते हैं। पूँछ पतली व छोटी होती है। इसके ऊन का रंग सफेद या काला होता है। कभी–कभी सफेद व काले रंग के मिश्रण में भी यह मिलती है। इसके पेट व टाँग पर ऊन नहीं पाई जाती है। इसका ऊन अपेक्षाकृत महीन व रेशा खुरदरा होता है। पहाड़ी क्षेत्रों में इसके विकास की परम आवश्यकता है। यह एक मध्यम श्रेणी की कालीन ऊन देने वाली नस्ल है। प्रतिवर्ष एक भेड़ से लगभग 400 ग्राम तक ऊन मिल जाती है।

**तिब्बतन**

भेड़ की यह नस्ल मूलतः तिब्बत देश की है, लेकिन इससे लगे सीमावर्ती प्रदेश सिक्किम के उत्तरी भाग व अरुणाचल प्रदेश के कामेंग जिलों में भी पाई जाती है। यह एक मध्यम आकार की नस्ल है। जिसका रंग सफेद होता है तथा चेहरे का रंग काला या भूरा होता है। इसकी नाक रोमनी होती है तथा कान छोटे, चौड़े व नीचे की ओर गिरे रहते हैं। पूँछ पतली एवं छोटी होती है। नर व मादा दोनों में सींग पाये जाते हैं। इसके चेहरे, पेट व टाँगों पर ऊन नहीं होती है। ऊन बारीक, मुलायम व उच्च कोटि की होती है। पूर्वोत्तर के राज्यों में इसके विकास की अपार संभावनाएं हैं। इसका प्रति भेड़ प्रतिवर्ष ऊन उत्पादन 8 कि0ग्रा0 तक होता है।

**गैरोल**

भेड़ की यह नस्ल पश्चिम बंगाल के चौबीस परगना जिले के सुन्दरबन डेल्टा में पाई जाती है। इसे स्थानीय लोग गैरोल के नाम से पुकारते हैं। जनन क्षमता की दृष्टि से यह एक सर्वोत्तम नस्ल है। यह छोटे आकार वाली नस्ल है, जिसका रंग हल्का भूरा होता है। इसके शरीर का गठन मजबूत तथा शरीर चौकोर होता है। इसके अलावा माथा छोटा, कान मध्यम आकार वाले तथा पूँछ पतली एवं छोटी होती है। नरों में सींग पाया जाता है। मादाएं प्रायः सींग रहित होती है। वयस्क नर का औसत भार 14.43 कि0ग्रा0 तथा मादा 14.14 कि0ग्रा0 वजन की होती है। मादा का अयन पूर्ण रूप से विकसित होता है तथा दूध की मात्रा भी पर्याप्त होती है जिससे कि ये अपनी जुड़वाँ सन्तानों का आसानी से पालन करती है। गैरोल भेड़ों की एक ब्यांत में जुड़वाँ एवं तीन संतानों की पैदाइश का औसत 53 एवं 8 प्रतिशत पाया गया है। कभी–कभी इस नस्ल से चार बच्चे भी प्राप्त हो जाते है। इसका ऊन मोटा होता है तथा निम्न स्तर की गलीचा/कालीन बनाने के काम में आता है। एक भेड़ से औसतन 179 ग्राम ऊन प्राप्त होता है। उत्तम, फेक बी जीन वाहक एवं सीमित संख्या में होने के कारण इस नस्ल का संरक्षण एवं संवर्धन आवश्यक है। अविकानगर में चल रही बहुप्रजता परियोजना में इस भेड़ ने एक अहम भूमिका निभाई है। इस भेड़ से जीन का अंतर्गमन मालपुरा भेड़ में करके संकर बहुप्रजनक भेड़ का विकास किया गया है।

# बकरियों की प्रमुख नस्लें

**सिध्दार्थ सारथी मिश्रा, इंद्रसैन चौहान, गोपाल आर. गोवाने एवं अरूण कुमार**

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की अर्थ व्यवस्था में पशुधन एवं पशुपालन का महत्वपूर्ण स्थान है। बकरी हमारे देश का काफी प्राचीन व्यवसाय है। बात चाहे दूध की हो चाहे माँस की हमारे देश के गरीब किसान के लिए बकरी से बेहतर कोई दूसरा पशु नहीं हैं। बडे पशुओं (गाय भैंस आदि) की शारीरिक आवश्यकता एवं रखरखाव काफी अधिक मंहगा पडता है ऐसी स्थिति में छोटे व गरीब किसानों के लिये बकरी पालन काफी सरल एवं लाभप्रद व्यवसाय है। बकरी के इन्ही गुणों के कारण इसे गरीब की गाय कहा जाता है। भारत में उपस्तिथ सभी प्रकार की कठिन वातावरणीय परिस्थितियों एवं उचित आहार के अभाव में भी बकरियों में उत्पादन करने की विलेक्षण क्षमता होती है। बकरी को धर के छोटे बच्चे व खाली सदस्य आराम से सार्वजनिक चरागाहों/बेकार पडी भूमि/नदी व रेलवे लाईन के किनारे आदि में चराकर पाल सकते हैं, जिससे इसके पालन पर होने वाले खर्च को कम किया जा सकता है। सूखे और पहाडी क्षेत्रों में भेड, गाय और बकरी पालन के तुलनात्मक अध्यन से पता चला है कि बकरियां भेडों से 40–160 प्रतिशत व अन्य मवेशियों से 130 प्रतिशत अधिक लाभकारी होती है। वैज्ञानिकों द्वारा किये गये आंकलनों के अनुसार बकरी पालन व्यवसाय में एक रुपया पूँजी लगाने से लगभग एक रुपया दस पैसे आराम से कमाये जा सकतें हैं जो कि अन्य प्रकार के पशुपालन से कहीं अधिक है। प्रतिवर्ष एक बकरी से लगभग 400–600 रुपये की शुद्व आय दूध से प्राप्त हो सकती है। बकरियों के नर बच्चे मांस उत्पादन के काम में लाये जाते हैं। छ; माह की आयु पर एक स्वस्थ बच्चे से 400–600 रुपये का लाभ प्राप्त किया जा सकता है। भारत में बकरियों की कुछ नस्लों के बाल लम्बे होते है जैसे राजस्थान की मारवाडी व पहाडी क्षेत्र की गद्दी नस्ल प्रमुख है। देश के पर्वतीय अंचल कश्मीर व हिमाचल प्रदेश में चेगूं व चांगथांगी नस्ल की बकरियां पाई जाती है जिनसे कीमती पश्मीना (रेशा) प्राप्त किया जाता है। एक बकरी से औसतन 65 से 250 ग्राम तक पश्मीना प्राप्त होता है। दूध, मांस व रेशा के अतिरिक्त किसान फसल कट जाने के उपरान्त बकरियों के रेवड को अपने खेतों में रखते हैं ताकि खेत में बकरी की मैंगनी व मूत्र जैवक खाद के रुप में मिल जाती है। रेवड को अपने खेतों में रखने के लिये किसान बकरी पालक को 25–50 रुपये प्रतिरात्रि के हिसाब से देता है। समाज का पिछडा वर्ग जिनके पास भूमि नही के बराबर है, बकरी पालन उद्योग को अपनाकर अपनी माली हालत को काफी हद तक सुधार सकता है, क्योंकि बकरी–पालन से निम्न कई फायदे है –

- बकरी दूध एवं मांस के लिये उपयुक्त स्त्रोत है।
- चमडे व बालों से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।
- इसकी खाद–मूत्र से खेत की उर्वरा शक्ति बडती हैं।
- कम आयु में ही इससे दूध उपलब्ध होता है।
- इसका मांस अन्य पशुओं के मांस की तुलना में अधिक पंसद किया जाता है।
- एक बार में एक से अधिक बच्चे दे सकते है।
- साल भर रोजगार प्रदान करती है।
- बहुत कम खर्चे में पाली जा सकती है।
- दूसरे पशुओं के मुकाबले कम स्थान धेरती है।
- विपरीत परिस्थितियों में पाली जा सकती है।
- बकरी का दूध अन्य पशुओं के दूध की तुलना में मानव दूध के काफी नजदीक है।

भारतीय बकरियों की नस्लों को जलवायु क्षैत्रो, उपयोगिता एवं शारीरिक आकार के आधार पर निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जाता है।

**(अ) जलवायु क्षेत्रों के आधार पर**

भारत वर्ष की विभिन्न प्रकार की जलवायु, वर्षा व भौगौलिक परिस्थितियों एवं इनमें पाई जाने वाली बकरियों की नस्लों के आधार पर इन क्षेत्रों को निम्न चार प्रकार के जलवायु क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है।

**(1) उत्तरी ठंडे क्षेत्र की नस्लें:**

इस क्षेत्र में जम्मु–कशमीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षैत्र एवं नेपाल देश की सीमाओं से लगा उत्तर सीमान्त प्रदेश शामिल है। आमतौर पर इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 200–250 मि.मी. तथा वार्षिक तापमान–4 से 30 डिग्री सेंटीग्रेड रहता है। इन क्षेत्रों में प्शुओं को चराने के लिए उत्तम चरागाह उपलब्ध हैं जिनमें प्रचुर मात्रा में जंगली घासें एवं वनस्पतियाँ उपलब्ध हैं। इस क्षेत्र की प्रमुख नस्लों में चेगूँ, चाँगथंगी, गद्दी एवं काश्मीरी आदि मुख्य है।

**(2) पूर्वोत्तर क्षेत्र की नस्लें:**

इस क्षंत्र में भारत के पूर्वोत्तर प्रदेश तथा असम, पश्चिमी बंगाल, उडीसा एवं बिहार का पूर्वोत्तर क्षेत्र आदि शामिल है। इस क्षेत्र की नस्लों में मुख्य रुप से गंजाम, आसाम हिल, ब्लैक बंगाल एवं बेरारी आदि नस्लें मुख्य हैं।

**(3) उत्तर पश्चिमी शुष्क से अर्द्व–शुष्क क्षेत्र की नस्लें :**

यह क्षेत्र भारत के उत्तर–पश्चिमी प्रदेशों को संगठित करता है। इस क्षेत्रो के मुख्य प्रान्तों में राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा गुजरात के मैदानी भाग शामिल है। यह क्षेत्र शुष्क से अर्द्वशुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली घासों, झाडियों एवं चारा वृक्षों से भरा हुआ है। इन वनस्पतियों में मुख्य रुप से खेजडी, अरडू, नीम, बबूल, कीकर, बरगद, बेरी, झडबेरी आदि वृक्षों की अधिकता है। यह क्षेत्र बकरियों की आबादी की दृष्टि से देश का सर्वाधिक धनी क्षेत्र है, जिसमें देश का करीब ४० प्रतिशत बकरी–वंश निवास करता है। भारत वर्ष की बकरियों की प्रमुख नस्लें भी इसी क्षेत्र से विकसित हुई हैं अथवा इसमें पाई जाती हैं। इस क्षेत्र की प्रमुख नस्लों में जमुनापारी, बीटल, बरबरी, सिरोही, जखराना, कच्छी, मारवाडी, सूरती, मेहसाना, झालावाडी, गोहिलावाडी, पर्वतसरी, देवगढी एवं मालवा आदि नस्लें मुख्य हैं।

**(4) दक्षिणी क्षेत्र की नस्लें :**

इस क्षेत्र में सम्मिलित प्रान्तों में केरल, तमिलनाडू, कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश आदि मुख्य हैं। इस क्षेत्र की प्रमुख नस्लों में मालाबारी, कनाई–अडू, संगमनेरी एवं उस्मानाबादी आदि प्रमुख है।

**(ब) उपयोगिता के आधार पर बकरियों का वर्गीकरण**

हमारे देश की बकरियों की नस्लों को उपयोगिता के आधार पर निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

**(1) दुग्ध उत्पादन करने वाली नस्लें:**

वैसे तो आमतौर पर सभी बकरियां कुछ न कुछ दुग्ध उत्पादन आवश्यक रुप से करती हैं परन्तु फिर भी इनमें से कुछ नस्लें अपनी उत्तम दुग्ध–उत्पादन क्षमता की वजह से ही जानी जाती है अतः इनका वर्गीकरण दुग्ध उत्पादन करने वाली नस्लों के तौर पर ही किया जा रहा है। इन नस्लों में मुख्य रुप से जमुनापारी, बीटल, बारबरी, जखराना आदि प्रमुख हैं।

**(2) मांस उत्पादन करने वाली नस्लें:**

इन नस्लों की उच्च शारीरिक विकास – दर एवं उत्तम श्रेणी का मांस पैदा करने की वजह से इन्हें इस श्रेणी में विभक्त किया जा रहा है। इन नस्लों में प्रमुख ब्लैक–बंगाल, गंजाम, आसाम हिल, संगमनेरी, कनाई–अडू, मालवा, मारवाडी, उस्मानाबादी एवं बेरारी आदि हैं।

**(3) द्विपयोगी (मांस एवं दूध) नस्लें :**

इन नस्लों से दूध एवं मांस दोनों ही प्राप्त होते हैं। इन नस्लों में प्रमुख सिरोही, कच्छी, मेहसाना, मालाबारी, झालावाडी, गोहिलावाडी, पर्वतसरी, सुरजी एवं देवगढी आदि प्रमुख हैं।

**(4) रेशा (मोहयर एवं पश्मीना) उत्पादन करने वाली नस्लें:**

यह नस्लें उत्तम किस्म का गर्म रेशा उत्पादन करती है। इन रेशों में मोहेयर एवं पश्मीना मुख्य है। इनमें चेगूँ, चाँगथंगी, गद्दी एवं काश्मीरी आदि नस्लें मुख्य हैं।

**(स) भाारीरिक आकार के आधार पर वर्गीकरण**

शारीरिक संरचना एवं आकार के आधार पर हमारे देश की बकरियों की नस्लों को मुख्य रुप से निम्न श्रेणियों में बांटा जा सकता है:–

**(1) बडे आकार की नस्लें:**

इस श्रेणी की बकरियों का शारीरिक आकार अन्य बकरियों की तुलना में बडा होता है। इन नस्लों में मुख्य जमुनापारी, बीटल, जखराना आदि हैं।

**(2) मध्यम आकार की नस्लें:**

यह नस्लें छोटे एवं बडे आकार की नस्लों के मध्य आती है तथा मध्यम रुप से दूध एवं मांस का उत्पादन करती हैं। इनमें सिरोही, कच्छी, मारवाडी, संगमनेरी, उस्मानाबादी, गद्दी, गंजाम, चेगूँ, चाँगथांगी, बेरारी, मालवा, मेहसाना, काश्मीरी, कनाई–अडू , मालाबारी, आसाम हिल, देवगढी, पर्वतसरी आदि प्रमुख नस्लें है।

**(3) छोटे आकार की नस्लें:**

ये छोटे आकार की नस्लें हैं। इसमें बरबरी, ब्लैक–बंगाल नस्ल ही प्रमुख रुप से आती है।

## भारत में पाये जाने वाली प्रमुख बकरी-नस्लों का संक्षिप्त परिचय

**बीटल**

यह बकरी दूध के उत्पादन में अच्छी मानी जाती है। ये बकरियां अपने औसतन 200 दिनों के दुग्धकाल में 180 किग्रा. तक दूध देती है। इनका औसत शरीर भार वर्ष भर में 22 किग्रा. तक पहुँच जाता है। यह आकार में बडी होती है तथा इनके शरीर का रंग काला, भूरा या सफेद धब्बेदार होता है। ये बकरियां पंजाब के अमृतसर, गुरुदासपुर तथा फिरोजपुर जिलों में मुख्य रुप से पायी जाती है।

**जमुनापारी**

यह बडे आकार की बकरी है जिनका रंग सफेद होता है, कुछ बकरियों के गले व सिर पर धब्बे होते हैं। इन बकरियों की नाक उभरी हुई होती है तथा बालों के गुच्छे होते हैं जिसे रोमन नोज कहते हैं। यह दूध एवं मांस दोनों के लिये पाली जाती है। यह बकरियां औसतन 190 दिनों में 200 किग्रा. तक दूध देती है। वर्ष भर में इनका शारीरिक भार 22–26 किग्रा. तक हो जाता है। इनके वयस्क नर व मादा का शरीर भार क्रमशः औसतन 45 एवं 36 किग्रा. होता है। यह नस्ल मुख्य रुप से उत्तरप्रदेश के इटावा जिले के चकरनगर व बाटपुरा इलाके में बहुतायत में पायी जाती है।

**जखराना**

यह आकार में बडी तथा काले रंग की होती है। इनके मुंह व कानों पर सफेद रंग के धब्बे पाये जाते है। इस नस्ल के कान चपटे एवं मध्यम आकार के होते है। यह एक दुकाजी नस्ल है, इनका दुग्ध उत्पादन 120 किग्रा. (115 दिनों में) होता है तथा वर्ष भर में इनका औसत शारीरिक भार 20 किलो तक पहुँच जाता है। इनके वयस्क नर का भार औसतन 55 किग्रा. तक होता है। इस नस्ल की बकरियां राजस्थान के अलवर जिले एवं आसपास के क्षेत्रों में पायी जाती है।

**मारवाडी**

यह मध्यम आकार की काले रंग की बकरी होती है। इनका शरीर लम्बे बालों से ढका होता है। इसका रंग काला, कान चपटे, मध्यम आकार के व नीचे की और गिरे होते हैं। ये बहुकाजीय बकरियां होती है अर्थात इनसे दूध व मांस के साथ साथ बाल भी प्राप्त होते हैं। ये बकरियां 117 दिनों के दुग्धकाल में 102 किग्रा. तक दूध देती है। इनका औसत वजन वर्ष भर में 18 किग्रा. तक पहुँच जाता है। इनके शरीर से वर्ष में औसतन 200 ग्रा. बालों की प्राप्ति होती है जो गलीचे/नमदा आदि बनाने में काम बाते हैं। यह नस्ल राजस्थान के जोधपुर, पाली, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, बाडमेर जिलों में पाई जाती है।

**सिरोही**

यह गंठे आकार वाली मध्यम ऊँचाई की बकरी है। इनका रंग भूरा होता है व कुछ बकरियों के शरीर पर हलके व गहरे रंग के भूरे सफेद धब्बे पाये जाते हैं। इस नस्ल की एक विशेष पहचान यह भी है कि कुछ पशुओं में गले के नीचे कलंगी (मांसल भाग वैटल) होती है। यह नस्ल दूध व मांस के लिये पाली जाती है। यह नस्ल अपने औसतन 200 दिनों के दुग्धकाल में 120 किग्रा. तक दूध दे देती है। इनका वर्ष भर में शारीरिक वजन 25–30 किलों तक पहुँच जाता है। यह नस्ल राजस्थान के सिरोही अजमेर, नागौर, टोंक, उदयपुर आदि जिलों में मुख्य रुप से पायी जाती है।

**बरबरी**

बकरी की यह नस्ल आकार में मध्यम व भूरे/सफेद तथा कतथई धब्बों सहित सफेद रंग की होती है। इनके कान छोटे होते हैं तथा सींग पीछे की और मुडे होते हैं। इसे बाँधकर भी सफलता पूर्वक पालन किया जा सकता है। इनका दुग्ध उत्पादन 150 दिनों में औसतन 75 किग्रा. होता है। इनका वर्ष में शरीर भार 18 किग्रा पहुँच जाता है। इस नस्ल की बकरियां उत्तरप्रदेश के एटा, आगरा, अलीगढ व मथुरा जिलों में पाई जाती है।

**कच्छी**

यह मध्यम आकार वाली नस्ल है इनका रंग काला व शरीर के अगले भाग पर सफेद धब्बे होते हैं। इनकी नाक उभरी, कान लम्बे व गिरे होते होते हैं। इनका वर्ष भर में शरीर भार 20–22 किग्रा. तक पहुँच जाता है। यह नस्ल 176 दिनों के दुग्ध काल में औसतन 110 किग्रा. तक दूध देती है। बकरियों की यह नस्ल गुजरात के कच्छ जिले में पाई जाती है।

**संगमनेरी**

ये मध्यम आकार की होती है। इनका रंग काला, सफेद व भूरा होता है। कभी कभी इन पर तीन रंगों का मिश्रण देखा गया है। इनके कान मध्यम व नीचे की और गिरे होते हैं। इन बकरियों के नर व मादा का वयस्क भार औसतन 38 व 27 किग्रा. होता हैं। इस बकरी का अंगोरा नस्ल से संकरण कराने पर वर्ष भर में औसतन 2 किग्रा. मोहेयर प्रति बकरी प्राप्त होता है। ये बकरियां 190 दिनों में लगभग 85 किग्रा. दूध देती है। बकरी की यह नस्ल महाराष्ट्र के पूना व अहमदनगर जिलों में पाई जाती है।

**मालाबारी :** इन बकरियों का आकार मध्यम होता है ये काले व मिश्रित सफेद रंगों में पाई जाती है। इनके नरों में दाढी पाई जाती है। ये बकरियां अपने 200 दिनों के दुग्ध काल में 120 किग्रा. दूध देती है। इनका एक वर्ष में शरीर भार 18–22 किग्रा. तक पहुँच जाता है। इनकों दूध व मांस दोनों के लिये पाला जाता है। यह नस्ल केरल प्रदेश के कालीकट, कन्नोंर जिलों में पाई जाती है।

**गंजाम**

यह नस्ल कद में ऊंची होती है। इनका रंग काला, सफेद, भूरा व धब्बे दार तक होता है। यह नस्ल अच्छे मांस उत्पादन के लिये विश्व प्रसिद्व है। इन बकरियों के कान मध्यम आकार वाले तथा सींग लम्बे व ऊपर की और उठे हुए होते हैं। वयस्क शरीर भार नर का औसतन 45 किग्रा. व मादा का 31 किग्रा. तक होता है। बकरी की यह नस्ल उडीसा के दक्षिणी जिलों गंजाम व कोरापुट में विशेष रुप से मिलती है।

**ब्लैक बंगाल**

यह बकरी छोटे कद की होती है इनका रंग सामान्य काला होता है पर कभी कभी यह हल्के लाल रंग में भी मिलती है। इनके मादा व नर दोनों में दाढी होती है इनके सींग छोटे और ऊपर की और उठे होते हैं। यह एक अच्छी जनन क्षमता वाली मांस उत्पादक नस्ल है। यह नस्ल पश्चिम बंगाल, असम व समस्त पूर्वांचल राज्यों में पायी जाती है।

**गद्दी**

इस नस्ल की बकरियां मध्यम आकार वाली तथा सफेद रंग की होती है। इनका पूरा शरीर लम्बे–लम्बे बालों से ढंका रहता है। इनके नर सामान ढोंने के काम में भी आते हैं। इस बकरी से उत्पन्न बालों से रस्सी तथा कम्बल बनते हैं। एक बकरी से साल में औसतन एक किग्रा. तक बाल मिलते हैं। यह नस्ल चम्बा, कांगडा, कुल्लू, शिमला, किन्नोर, नैनिताल, चमोली जिलों में पायी जाती है।

**चाँगथांगी**

इसे पश्मीना बकरी भी कहते हैं। इस नस्ल की बकरियां मध्यम आकार की होती है। मुख्य रुप से इनका रंग सफेद होता है पर शरीर पर काले व भूरे रंग के कहीं–कहीं धब्बे भी होते हैं। ये बकरियां मुलायम, गर्म तथा उच्चकोटि का रेशा उत्पन्न करती है। इन बकरियों से वर्ष में में 150 से 210 ग्राम तक पश्मीना प्राप्त होता है। यह नस्ल लद्वाख के चांगथांग क्षेत्र में तथा हिमाचल की लाहौल–स्पिति घाटियों में पायी जाती है।

**चेगूँ**

यह एक मध्यम आकार की बकरी है तथा इनका रंग सामान्यतः सफेदी लिये हुये भूरा लाल होता है। इन बकरियों से वर्ष में 100–110 ग्रा. मुलायम रेशा प्राप्त होता है। ये मुख्य रुप से काश्मीर, चमोली, उत्तरकाशी और पिथौरागढ क्षेत्रों में पायी जाती है।

विश्व के दूसरे भागों में भी बकरियों की कुछ अच्छी नस्लें पायी जाती है। जैसे अल्पाईन, सानेन, टोंगनवर्ग, अंगोरा एवं एंग्लोन्यूबियन आदि अच्छी उत्पादन क्षमता रखती है। हमारे देश में इनका प्रयोग संकरण प्रक्रिया द्वारा स्वदेशी बकरियों की उत्पादन क्षमता बढाने के लिये होता है जिसके अच्छे परिणाम मिले हैं। अंगोरा एक अच्छी रेशा उत्पादक बकरी है जिसका औसत उत्पादन 1.5–2 किग्रा. प्रतिवर्ष है। इसके रेशे को मोहेयर भी कहते हैं। सानेन बकरी को दूध की रानी कहा जाता है। इसका औसत दूध उत्पादन 3–4 किग्रा. प्रतिदिन होता है। इन बकरियों को भारत में पूना के नारायण गांव बकरी प्रजनन केन्द्र से प्राप्त किया जा सकता है।

# भेड़–बकरियों में प्रजनन संबंधी समस्यायें एवं समाधान

**कृष्णप्पा बी, बहीरे संघरत्ना, कल्याण डे, विजय सक्सेना एवं देवेन्द्र कुमार**

भेड़–बकरी पालन से उत्पादन तथा आर्थिक लाभ भेड़–बकरियों की प्रजनन क्षमता पर निर्भर करता है। पशु चाहे कितना भी उत्पादक क्यों न हो अगर प्रजनन संबंधी समस्याओं की वजह से प्रजनन करने में सक्षम नहीं है तो वह अनुपयोगी है। अतः भेड़–बकरी पालको को भेड़–बकरियों की प्रजनन क्षमता एवं उत्पादन बढाने के लिए प्रजनन संबंधी समस्याओं के बारे मे तथा उनके समाधान के बारे में जानकारी होना आवश्यक है ताकि भेड़–बकरी पालक इन समस्याओं का समाधान कर अधिक से अधिक लाभ कमा सके। पशुओं का समय से मद (ताव) में न आना, बार–बार ताव में आना, गर्भधारण न करना, गर्भपात होना, प्रसव के दौरान आने वाली कठिनाइयाँ, प्रसव के बाद जेर का न गिरना एवं उसके पश्चात मादा जननाँगों में संक्रमण होना आदि प्रजनन संबंधी समस्याओं का सामना किसानों को प्रायः करना पड़ता है। इस अध्याय का उद्देश्य इन समस्याओं के बारे में जानकारी देना तथा इनके निवारण हेतु उपाय बताना है।

इन समस्याओं को समझने तथा इनके समाधान के पूर्व भेड़–बकरी पालको को भेड़–बकरियों की मूल दैहिकी प्रक्रिया की जानकारी होना अति आवश्यक है। समान्यतः भेड़ 8–10 माह एवं बकरी 6–8 माह की आयु में गर्भधारण करने की क्षमता अर्जित कर लेती है। जब भेड़ वयस्क अवस्था का 60–65 प्रतिशत वजन ग्रहण कर ले तो समझना चाहिए कि भेड़ गर्भधारण करने योग्य हो चुकी है। भेड़ों में मदचक्र (दो मदकाल के बीच का समय) 16–18 दिन होता है। अर्थात प्रजनन के मौसम में भेड़ 16–18 दिन बाद मद में आती है। भेड़ मद में 24– 36 घटें तक रहती है। मद खत्म होने के लगभग 6–10 घटें पहले अण्डाश्य से अण्डा निकलता है। शुक्राणुओं से निशेचन के लिए अण्डा उपलब्ध रहे इसलिए यदि भेड़ सुबह मद में आती है तो शाम को मेढ़े से मिलाना चाहिए और यदि शाम को मद में आती है तो सुबह मिलाना चाहिए। भेड़ का गर्भकाल 150 दिन होता है। बकरियों में मदचक्र 21 दिन होता है।

### भेड़ का मद में न आना

भेड़–बकरियों का गर्मी में आना उनके मष्तिष्क की एक विशेष अन्त–ग्रन्थि (पिटयूटरी) से निकले हारमोन्स (जी. एन. आर. एच., एफ. एस.एच., एल. एच.) पर निर्भर करता है। ये हार्मोन्स अण्डाशयों पर प्रभाव डालते हैं। जिससे पशु गर्मी में आता है। इन हार्मोन्स का सुचारु रुप से निरन्तर बनना व रत्रावित होना पशु की आनुवंशिकी, तापमान, दिन का घटना–बढ़ना, आहार व्यवस्था एवं सामान्य प्रबन्धन पर निर्भर करता हैं। अधिकांशतः आपने देखा होगा कि कोई–कोई पशु कभी भी गर्मी में नहीं आता। इसका मतलब उसमें आनुवंशिकीय समस्या है। ऐसे पशु का कोई उपचार नहीं है तथा इसे रेवड़ से निकाल देना चाहिए। इसी प्रकार गर्मियों में जब अधिक तापमान होता है तो इन हार्मोन्स की कमी से पशु गर्मी में नहीं आता। यदि पशु को संतुलित आहार नहीं दिया जाता है तो भी इन हार्मोन्स की कमी हो जाती है तथा पशु गर्मी में नहीं आता हैं। इसी तरह पशुशाला की साफ–सफाई यदि ठीक नहीं है तो पशु अन्य बीमारियों के शिकार हो सकते हैं। उनके पेट में कीड़े हो सकते हैं जिनकी वजह से पशु धीरे–धीरे कमजोर होने लगता है तथा इन हारमोन्स की कमी की वजह से पशु गर्मी में नहीं आता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भेड़ को समय पर मद में लाने के लिए प्रबन्धन खास तौर पर आहार व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना चाहिए। फिर भी यदि भेड़ मद में नहीं आती है तो निम्नलिखित उपचार क्रमवार किये जा सकते हैं:

1. मेंगनियों की जाँच कराकर कीड़ों की दवा पिलायें।
2. अच्छे चारे व दाने के साथ साथ कम से कम तीन–चार सप्ताह तक 10 ग्राम खनिज मिश्रण (अविकामिनमिक्स, नूविमिन फोर्ट, सप्लीविट एम आदि) खिलायें।

3. आयुर्वेदिक दवायें जैसे–प्रजना, भंजना के दो केप्सूल गुड़ या शीरे के साथ मिलाकर खिलायें। यदि फिर भी पशु गर्मी में न आये तो 10–12 दिन बाद दो बार दो केप्सूल खिलायें ।
4. हार्मोन्स के इंजेक्शन जैसे– रिसेप्टल ( जी. एन. आर. एच.) 0.5–1.0 मि.ली. फोलोगोन (पी.एम.एस.जी.) 400–800 आई.यू., कोरीलोन (एच.सी.जी.) 100–500 आई.यू., लगवायें।
5. संस्थान द्वारा स्वदेशी तरीके से विकसित प्रोजेस्ट्रोन युक्त स्पंज तथा पी.एम.एस.जी. (200 आई.यू.,) का संयुक्त रूप से प्रयोग भेड़–बकरियों को गर्मी में लाने का एक जॉचा परखा, सस्ता एवं प्रभावी तरीका है। स्पंज योनि में 12 दिन तक रखकर, 13 वें दिन योनि से स्पंज निकालने के बाद तथा उसी दिन पी.एम.एस.जी. (200 आई.यू.,) का इन्जेक्शन लगाने से भेड़ 2 से 3 दिन के अन्दर मद में आ जाती हैं।

इन तरीकों को विशेषकर हार्मोन्स को पशु चिकित्सक की सलाहनुसार प्रयोग करें अन्यथा ये भेड़ पर विपरीत असर डालकर उन्हें बाँझ भी बना सकते हैं। इस समस्या के निवारण के लिए हाल ही मे संस्थान द्वारा हार्मोन्स के बदले कुछ रसायनों (किस्पैपटिन व डोपामिन एंटागोनिस्ट) को भेड़–बकरियों को गर्मी में लाने के लिए सफल परीक्षण किये गये है। भविष्य में इन रसायनो से गर्मी मे न आने वाली भेड़–बकरियों का उपचार किया जा सकता है।

**गर्भधारण न करना तथा बार बार मद में आना**

प्रायः भेड़ ठीक समय पर मद में आती है लेकिन मेढ़े से मिलाने के पश्चात भी ग्याभिन होने के बजाय दुबारा मद में आती हैं। कुछ भेड़ें तो दो से तीन बार मद में आती हैं। इस समस्या के निम्न लिखित कारण हो सकते हैं:

1. मेढ़े के वीर्य का ठीक न होना
2. अण्डाशय से अण्डे का न निकलना या देर से निकलना जिससे निषेचन न होना।
3. मादा जनानाँगों में सूजन या संक्रमण।
4. शरीर में प्रोजेस्ट्रोन नामक हार्मोन की कमी होना।

ऐसी भेड़ का किसी विशेषज्ञ पशु चिकित्सक से कारणों के अनुसार इलाज करायें। यदि मेढ़ें का वीर्य ठीक नहीं है तो मेढ़ा बदल देना चाहिए या फिर कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए। अण्डाशय से समय पर अण्डा निकलने के लिए रिसेप्टल ( जी. एन. आर. एच.) या कोरुलोन (एल.एच.) विशेषज्ञ की सलाहनुसार दिया जा सकता हैं । मादा जनानाँगों में सूजन या संक्रमण रोकने के लिए एन्टीबायोटिक ( ओरीप्रिन 2–5 मि.ली., बिस्टरपेन–1 मिली. प्रति पाँच कि.ग्रा. शरीर भार) या एन्टीसेप्टिक (पोविडोन आयोडिन, फ्यूरियाबोलस– एक बोलस, ओरीप्रिन यू बोलस– एक बोलस) दी जा सकती हैं । ये दवायें यदि मादा जनानाँगों में डाली जायें तो अधिक प्रभावशाली हो सकती हैं। शरीर में प्रोजेस्ट्रोन हार्मोन की कमी में प्रोलूटोन या डयूराप्रोजन नामक इंजेक्शन लगाये जा सकते हैं। इन सब इलाजों से पहले भेड़ के प्रबंधन एवं आहार व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

**गर्भपात**

भेड़–बकरियों में गर्भावस्था के दौरान बच्चे का गिरना, कमजोर एवं विकलाँग बच्चों का जन्म होना, समय से पहले बच्चे का जन्म आदि समस्याओं के कई कारण हैं जिसमें मुख्यतः कुपोषण, जहरीले पौधे खाना व कुछ विषाणुजनित एवं जीवाणुजनित रोगों का होना है। अतः गर्भावस्था के दौरान भेड़–बकरियों की विशेष देखभाल करनी चाहिए। उनका चारा दाना अगर्भित भेड़ों की तुलना में

बढ़ा देना चाहिए। गर्भपात बीमारी के अधिकतर विषाणु व जीवाणु संक्रमित चारा या दाना खाने से फैलते हैं। इसलिए गर्भपात रोकने के लिए गिरे हुए बच्चों व जेर आदि को नष्ट कर देना चाहिए ताकि चारा व पानी उनके सम्पर्क में ना आये। जिन भेड़ों का गर्भपात हुआ हो उनको रेवड़ से अलग कर इलाज करवाना चाहिए। जिन भेड़ों में गर्भपात होने की संभावना हो उनको 200 मिग्रा. क्लोरोट्रेट्रासाईकलिन प्रति भेड़ प्रति दिन के हिसाब से 15 से 20 दिन तक खिलानी चाहिए।

### गर्भावस्था विषाक्तता

यह एक उपापचय रोग है जो गर्भावस्था के अखिरी माह में शरीर में ग्लुकोज (ऊर्जा) की कमी से होता हैं। यह रोग उन भेड़–बकरियों में अधिक होता है जिसमें दो या अधिक बच्चे देने की संभावना होती हैं। इस रोग की संभावना बकरी की तुलना में भेड़ों में अधिक होती हैं। पशु का सुस्त होना, जुगाली न करना, दाँत किटकिटाना, श्रवाँस लेने में कठिनाई तथा साँसों में मीठी–मीठी गंध, मुँह में झाग तथा बार बार पेशाब करना इस बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं। बीमार भेड़ दो तीन दिन के अन्दर खड़े होने में असमर्थ हो जाती हैं। इस रोग के निदान के लिए पशु को गुड़ या शक्कर पानी में मिलाकर देने से लाभ मिलता हैं। जरुरत पड़ने पर ग्लुकोज की बोतल नस में चढ़ाई जा सकती है। इस रोग की रोकथाम के लिए गर्भित भेड़ को गर्भावस्था के शुरु या मध्य में ज्यादा दाना नहीं खिलाना चाहिए तथा गर्भावस्था के आखिरी डेढ़ माह में चारा दाना बढ़ा देना चाहिए।

### प्रसव में कठिनाई

यदाकदा प्रसव के दौरान बच्चा बाहर न आकर भेड़ की योनि में फँस जाता है जिससे बच्चे एवं भेड़ दोनों की जान को खतरा हो सकता हैं। सामान्यतः प्रसव के दौरान बच्चे की अगली दोनों टाँगे व सिर पहले बाहर आते हैं परन्तु कई बार बच्चे की टाँग या गर्दन मुड़कर उसके शरीर के नीचे फँस जाती है जिससे बच्चा आसानी से बाहर नहीं आ पाता है । इसके अलावा कई बार गर्भाशय का मुँह पूरी तरह नहीं खुल पाता। अतः ऐसी समस्या के निराकरण के लिए कुशल पशु चिकित्सक की सलाह लेना आवश्यक हैं। प्रसव के दौरान स्वयं भेड़ या बच्चे को नहीं छेड़ना चाहिए।

**प्रसव के दौरान कठिनाई : मेमनें के खुर योनि से बाहर दिखते हुए**

**शल्य क्रिया द्वारा मेमनें का जन्म**

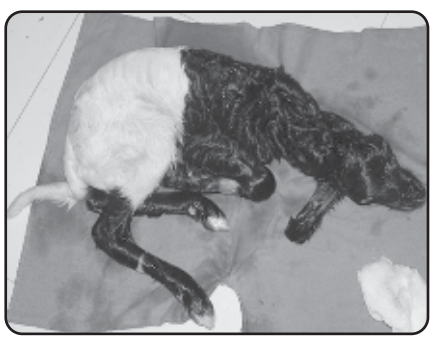

**शल्य क्रिया द्वारा जनित मेमनां**

### जेर का न गिरना

सामान्यतः प्रसव के उपरान्त लगभग 12 घटें के अन्दर जेर गिर जाती है लेकिन अपरिपक्व बच्चा होने अथवा गर्भकाल में उचित आहार न मिलने से कमजोर भेड़ व बकरियों में जेर का न गिरना एक प्रमुख समस्या हैं । ऐसी स्थिति में भेड़ को 1–2

यूटरीटोन केप्सूल गुड़ या शीरे के साथ या यूटरीटोन द्रव (40–50 मि.ली.) पिलायें तथा 4–6 लेपटाडिन गोली प्रथम दिन सुबह शाम गुड़ या शीरे के साथ खिलायें तथा इसकी आधी मात्रा अगले दो–तीन दिन तक दें। यदि फिर भी जेर न गिरे तो उसे विशेषज्ञ द्वारा हाथ की सहायता से बाहर निकलवायें। जेर यदि बाहर लटकी दिखाई पड़े तो एक छोटी लकड़ी में लपेट कर धीरे–धीरे इसे बाहर खींचे और लकड़ी में लपेटते जाएं जेर पूरी तरह निकलने के बाद गर्भाशय में टेरामाईसिन द्रव, मैस्टालोन यू या फ्यूरिया बोलस अन्दर डाल कर छोड़ दें।

**गर्भाशय का उलट जाना**

भेड़–बकरियों में प्रसव के उपरान्त जर्यायु या गर्भाशय का बाहर आना एक प्रमुख समस्या हैं। जिसका यदि समय से उपचार न किया जाए तो पशु की मृत्यु भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में तुंरत विशेषज्ञ की मदद से गर्भाशय को ठीक अवस्था में लाना चाहिए। पहले अपले हाथों को साबुन से धोकर डिटोल या सेवलोन से साफ करे। योनि से बाहर लटके गर्भाशय को पोटाशयुक्त पानी से भली भाँति धोकर उस पर मेस्टालोन यू या टेरामाईसिन द्रव पोतकर अथवा प्रोलेप्स–इन पाउडर छिड़कर कर धीरे से हाथ की हथेली या बन्द मुट्ठी की सहायता से यानि के अन्दर धकेल दे। पशु को एन्टीबायोटिक व दर्द निवारक दवा का इंजेक्शन दे, साथ ही टोनोफोस्फान का इंजेक्शन भी दे तथा ऑस्टो–कैल्सियम व खनिज मिश्रण खिलाऐं।

**प्रसव के उपरान्त योनि से बाहर आया गर्भाशय**

**शल्य क्रिया पश्चात स्वस्थ भेड व मेमनां**

**गर्भाशय शोथ**

ब्याने के बाद जेर का समय से न गिरना, गर्भपात होना, हाथ से बच्चा तथा जेर निकालना इस समस्या के प्रमुख कारण हैं। योनि में सूजन तथा लालिमा के बाद पहले लाल रंग का रक्त मिश्रित पतला और बाद में पीव मिश्रित सफेद गाढ़ा रत्राव बहना, पशु का पिछला धड़ इससे सन जाना और बैठने के स्थान पर गन्दा रत्राव दिखाई पड़ना, बुखार, सुस्ती, खाने–पीने में अरुचि, जुगाली न करना, बार–बार उठना बैठना तथा थोड़ा–थोड़ा करके कई बार पेशाब करना इस रोग के

मुख्य लक्षण हैं। इसके उपचार के लिए गर्भाशय की सफाई करके उसमें टेरामाईसिन द्रव या फ्यूरिया बोलस डाल सकते हैं। साथ ही यदि आवश्यकता हो तो माँसपेशियों में दो–तीन एन्टीबायोटिक का टीका लगायें।

**दुग्ध ज्वर**

अधिक दूध देने वाली भेड़ व बकरी में एक अन्य प्रकार की बीमारी अधिक पाई जाती हैं। उसे दुग्ध ज्वर या मिल्क फीवर कहा जाता है। इस रोग में बच्चा देने के एक सप्ताह के पहले या बाद में पशु काँपने लगता है, कान ठण्डे हो जाते हैं एवं शरीर निष्क्रिय हो जाता है। यह रोग मुख्य रुप से शरीर में कैल्सियम की कमी के कारण होता हैं। पशु के रक्त में कैल्सियम (कैल्सियम बोरो ग्लूकोनेट, काईफैक्स, कैलाबोरल, मिफीकोल) चढ़ाने पर यह जादू जैसा असर करता है और मरता हुआ पशु एकदम उठकर खड़ा हो जाता हैं। इसकी रोकथाम के लिए आस्टोकैल्शियम बी–12 सीरप व विमरोल ब्याने के एक माह पूर्व तथ कुछ दिन बाद तक पशु को पिलायें।

# भेड़ एवं बकरी की पोषण व्यवस्था एवं उन्नत तकनीकियाँ

**सुरेन्द्र कुमार सांख्यान, आर्तबन्धू साहू, रणधीर सिंह भट्ट एवं ओम हरी चतुर्वेदी**

मनुष्य ने अपनी आवश्यकता के अनुसार विभिन्न प्रकार के पशुओ का पालन करना प्रारम्भ किया है भेड़ व बकरी का पालन शायद इसलिये किया गया की उनकी मांस व ऊन की आवश्यकता पूरी हो सके। इनकी खाल को पहना जा सके। प्रकृति में ये दोनों पशु अपने कम आकार व भार के कारण व मानव के साथ रहने व अपने आपको ढालने की क्षमता के कारण सबसे पहले पालतू पशु बने। आज के इस समय में भी यह पशु अपने इन गुणो के कारण हमारी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। अब भेड़ एवं बकरी पालन एक व्यवसाय के रूप में स्थापित हो रहा हैं। भेड़ एवं बकरी को भी जुगाली करने वाले अन्य पशुओं (गाय एवं भैंस) की तरह पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। आवश्यक मुख्य पोषक तत्व, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, वसा, विटामिन्स और खनिज लवण होते है। इन पोषक तत्वों के अलावा पानी भी एक पोषक तत्व माना जा सकता है जिसकी सबसे बड़ी महता यह है कि इसके बिना ऊपर दिये गये पोषक तत्वों में से कोई भी शरीर में काम नहीं आ सकता है। पानी सभी जगह प्रचुर मात्रा में उपलबध होने के कारण इसको ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता है हालांकि गर्मियों के मौसम में विशेषकर राजस्थान में पानी के महत्व को समझा जा सकता है।

हमारे देश में अनेक व्यवसायी मांस के उत्पादन को बढ़ाने के लिए भेड़ एवं बकरी पालन हेतु आगे आ रहे है। आजकल भेड़ एवं बकरियों को या तो एक जगह रखकर वहीं उन्हें दाना, भूसा एवं चारा देते हैं अथवा कुछ समय के लिए चरने भेज देते हैं तथा पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ दाना, भूसा एवं चारा देते हैं। जब भेड़ एवं बकरियों को अधिक संख्या मे अधिक समय तक साथ रखते है, तो आवास उनकी उत्पादन क्षमता एवं बीमारियों को भी प्रभावित करता है। साथ ही साथ इस तरह के भेड़ एवं बकरी पालन में खर्चे का अधिकांश हिस्सा दाने–चारे खरीदने में व्यय हो जाता है। इसके लिए जरूरी है कि दाने–चारे के भण्ड़ारण में तथा खिलाने में कम से कम नुकसान हो। भेड़ एवं बकरियों को खिलाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनका भोजन पोषण तत्वों से भरपूर हो तथा उपकरण इस तरह का हो उससे कम से कम दाना–चारा गिरे एवं भेड़ एवं बकरियों का पेशाब एवं मैंगनी न जाने पाए ।

## प्रोटीन

भेड़ एवं बकरियों के शरीर के रख–रखरखाव के अलावा प्रोटीन शरीर की वृद्धि में काम में आती है। बढ़ते हुए बच्चे तथा दूध देने वाली भेड़ एवं बकरियां दोनों को ही प्रोटीन की आवश्यकता होती हैं। भेड़ एवं बकरियां यह प्रोटीन हरे व सूखे चारे, पेड़ों और झाड़ियों की हरी पत्तियों तथा दाने विशेषकर खली से प्राप्त करती है। दलहनी फसलों के चारे में प्रोटीन की मात्रा ज्यादा होती है जैसे बरसीम, रिजका, लोबिया इत्यादि। इसी तरह बबूल, बेर और खेजड़ी की पत्तियों में भी प्रोटीन की मात्रा ज्यादा होती है। हरे चारे की फसल को सहीं समय पर सुखाने पर भी भेड़ एवं बकरी को खिलाया जा सकता है। जिसे ''हे'' कहते है। इसी तरह दाने के मिश्रण मे खली तथा दाल की चूरी ही दो ऐसे अवयव है जिनमें प्रोटीन की मात्रा काफी होती है। मूंगफली की खल में क्रूड प्रोटीन करीब 40 से 45 प्रतिशत होती है, जबकि तिल की खली में 30 से 35 प्रतिशत तथा चना चूरी में 15 प्रतिशत के आस–पास क्रूड प्रोटिन होती है।

## कार्बोहाइड्रेट्स

ये ऊर्जा के मुख्य स्रोत है। ये दो प्रकार के होते है एक रेशे वाले जिसमें सेल्यूलोज मुख्य है। सेल्यूलोज नामक कार्बोहाइड्रेटस को केवल जुगाली करने वाले पशु ही पचा सकते हैं। दूसरी तरह के कार्बोहाईड्रेटस में (पानी में घुलनशील)

स्टार्च मुख्य है, जो कि दाने में जैसे मक्का, जौ, गेहूँ, चावल या इससे बने पदार्थो में पाया जाता है। इसका भेड़ एवं बकरी के अलावा अन्य बिना जुगाली वाले पशुओं में भी महत्व है।

**वसा**

भेड़ एवं बकरी के आहार में यह चारे तथा दाने के स्रोत से पूरा हो जाता हैं। इसका मुख्य काम है शरीर को कार्य करने के लिए ऊर्जा प्रदान करना। दुधारू पशुओं में दुग्ध वसा का मुख्य भाग पशु आहार से ही आता है।

**विटामिन्स**

भेड़ एवं बकरियों के लिये यह भी आवश्यक पोषक तत्व है। भेड़ एवं बकरी रूमनधारी पशु होने तथा इसके रूमन में सूक्षमजीवी होने से यह पशु विटामिन्स ए, डी तथा ई को छोड़कर अन्य सभी विटामिन्स जैसे बी काम्प्लैक्स, सी तथा के को स्वंय शरीर में (रूमन) बनाने की क्षमता रखता है। अतः विटामिन्स के, सी तथा बी काम्प्लैक्स अलग से देने की आवश्यकता नहीं होती परंतु एक बात हमेशा ध्यान में रखी जाए कि तीन महीने से कम के बच्चों के रूमन के अंदर सूक्ष्मजीवी प्रतिक्रिया भलिभांति विकसित नहीं होती है। इसलिए इस आयु तक के बच्चों को सारे विटामिन्स आहार में देने की आवश्यकता होती है।

**खनिज लवण**

कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नेशियम, सल्फर, सोडियम, क्लोरीन, पोटेशियम, लोहा, तांबा, कोबाल्ट, जस्ता, आयोडीन, मैग्नीज तथा सैलेनियम की भी आवश्यकता भेड़ एवं बकरी को होती है। इसके अलावा क्रोमियम, निकिल, वैनेडियम तथा टिन भी महत्वपूर्ण है। हालांकि दाने और चारे दोनो में ही विभिन्न प्रकार के खनिज लवण पाए जाते है परंतु इनकी मात्रा पशु शरीर की आवश्यकता के अनुरूप नहीं होती इसलिए इनका अलग से देना आवश्यक है। ये खनिज मिश्रण (मिनरल–मिक्चर) के रूप मे दिए जाते हैं। दाने में इनकी मात्रा 2 प्रतिशत रहती है तथा नमक की मात्रा 2 प्रतिशत होती है। भेड़ एवं बकरियों की शारीरिक क्षमता, प्रजनन और उत्पादन के स्तर को बनाए रखने के लिए रोजाना इसका इस्तेमाल अच्छा माना गया हैं। संस्थान के द्वारा जो दाना उपलब्ध कराया जाता है उसकी सारणी– (1 एवं 2) निम्नलिखित है। वयस्कों के दाने में क्रूड प्रोटीन की मात्रा 12 प्रतिशत तथा मेमनो के दाने मे क्रूड प्रोटीन की मात्रा 14 प्रतिशत तक होती हैं ।

| क्र. स. | व्यस्कों के दाने का मिश्रण | |
|---|---|---|
| | अवयवों के नाम | प्रतिशत |
| 1 | मक्का | 45 |
| 2 | जौ | 45 |
| 3 | मूगंफली की खल | 4 |
| 4 | सरसों की खल | 3 |
| 5 | तिल की खल | 0 |
| 6 | खनिज मिश्रण | 2 |
| 7 | नमक | 1 |

| क्र. स. | मेमनों के दाने का मिश्रण | |
|---|---|---|
| | अवयवों के नाम | प्रतिशत |
| 1 | मक्का | 36 |
| 2 | जौ | 40 |
| 3 | मूगंफली की खल | 14 |
| 4 | सरसों की खल | 4 |
| 5 | तिल की खल | 3 |
| 6 | खनिज मिश्रण | 2 |
| 7 | नमक | 1 |

### मांसदायी मेमना उत्पादन

किसानों के यहाँ प्रचलित खिलाई–पिलाई पद्धति के अन्तर्गत मेमने 3 माह की आयु पर 12–14 कि.ग्रा. तथा 6 माह की आयु पर 20–22 कि.ग्रा. शारीरिक भार प्राप्त करते है। सघन खिलाई पद्धति में 50 प्रतिशत मोटे चारे तथा 50 प्रतिशत रातिब मिश्रण अथवा सामुदायिक चरागाहों पर चराई के उपरान्त इच्छानुसार भरपूर रातिब मिश्रण की पूरक खिलाई करने से देशी नस्लों के मेमनो का 6 माह की आयु पर शारीरिक भार 33 कि.ग्रा. पहुँच जाता है। इस व्यवसाय में प्रति कि.ग्रा. शारीरिक भार की सघन एवं अर्ध–सघन खिलाई पद्धति में क्रमशः 50 एवं 45 रुपये आती है। इस प्रकार प्रति कि.ग्रा. मांस उत्पादन की लागत क्रमशः 100 एवं 90 रुपये आती है जबकि देश के विभिन्न भागों में भेड़–मांस 200–250 रुपये प्रति कि.ग्रा. की दर से बेचा जाता है। आर्थिक दृष्टिकोण से यह व्यवसाय लाभकारी है क्योंकि प्रति एक रुपया खर्च करने पर लगभग दो रुपये की वापसी होती है। देश में भेड–मांस उत्पादन बढ़कर इस व्यवसाय से जुड़े किसानों की आय बढ़ाई जा सकती है। इस व्यवसाय में लगे किसानों के स्वयं सहायता समूह बनाकर इस तकनीक को स्थानान्तरित किया जा सकता है। सम्पूर्ण आहार के रूप में सहायता एवं मांसदायी मेमनो का संगठित पशु वध गृहों में विपणन करके घरेलू उपभोग, निर्यात बाजार एवं मूल्य संवर्धन किया जा सकता है।

### एक वर्ष की भेड़ों व मेढ़ों का पोषण

एक वर्ष की आयु वाली भेड़ों व मेढ़ों को आहार इस प्रकार खिलाना चाहिए कि इनकी बढ़वार एवं निर्वाह उपयुक्त हो सके किन्तु इन पशुओं के शरीर में वसा की अधिक मात्रा का संचय अनुपयोगी होता है। इसलिए कम ऊर्जा वाले आहार को खिलाया जाता है। इस प्रकार के पशुओं की उन चरागाहों में अच्छी चराई करानी चाहिए जहाँ भेड़ों के खाने योग्य घास तथा अन्य वनस्पतियाँ हों। चराई पर पाले जा रहे पशुओं को चराई के अतिरिक्त प्रति पशु प्रतिदिन 300–400 ग्राम रातिब मिश्रण खिलाने पर वांछित लाभ होता है। चूंकि वर्षाकाल के दौरान चरागाहों में प्रचुर मात्रा में चारा उपलब्ध होता है इसलिए इस अवधि में चराई के उपरान्त रातिब मिश्रण के रूप में पूरक खिलाई की विशेष आवश्यकता नहीं होती है। दूसरी तरफ ग्रीष्मकाल एवं शीतकाल में जब चरागाहों में चारों की मात्रा एवं गुणवत्ता घट जाती है तब पूरक खिलाई के रूप में रातिब मिश्रण खिलाने से उत्पादन में सुधार होता है और किसानों को लाभ मिलता है। जब भेड़ों और मेढ़ों को बाड़े में रखकर ही पाला जाता है और उनकी खिलाई–पिलाई की जाती है तब उन्हें पर्याप्त मात्रा में रातिब मिश्रण (300 ग्राम प्रति पशु प्रतिदिन ) तथा अच्छी गुणवत्ता का सूखा एवं हरा चारा खिलाते हैं। इसके अलावा पशुओं के घूमने–फिरने की पर्याप्त जगह होनी चाहिए।

**भेड़ों एवं मेढ़ों के लिए रातिब मिश्रण का संघटन**

| खाद्य अवयव | मात्रा (किग्रा. प्रति 100 किग्रा.) | | |
|---|---|---|---|
| | प्रकार 1 | प्रकार 2 | प्रकार 3 |
| जौ / मक्का / बाजरा / ज्वार | 28 | 35 | 20 |
| क्षतिग्रस्त गेहूँ | 18 | – | – |
| सरसों / मूँगफली की खल | 25 | 22 | 15 |
| गेहूँ का चोकर | 17 | 31 | 38 |
| तेल रहित चावल की चोकर | 10 | – | 15 |
| दाल चूरी | – | – | 10 |
| खनिज मिश्रण | 1 | 1 | 1 |
| साधारण नमक | | 1 | 1 |

### प्रजनन हेतु मेढ़ों का भरण–पोषण

प्रजनन हेतु प्रयोग में नहीं आ रहे मेढों के लिए चारे की उपयुक्त मात्रा एवं अच्छी गुणवत्ता वाला चरागाह पर्याप्त होता है किन्तु चरागाहों की गुणवत्ता ठीक न होने पर शीत एवं ग्रीष्म काल में प्रति मेढ़ा प्रतिदिन 300 से 400 ग्राम रातिब मिश्रण खिलाना लाभप्रद रहता है। प्रजनन काल के प्रारम्भ होने के 2 सप्ताह पूर्व से प्रजनन काल के अन्त तक प्रति मेढ़ा प्रतिदिन 400 ग्राम रातिब मिश्रण खिलाना चाहिए।

### ग्याभिन भेड़ों की खिलाई–पिलाई

गर्भावस्था के प्रारम्भ से 3 माह तक भ्रूण का विकास धीमी गति से होता है इसलिए इस अवधि में अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता नहीं होती है। इस अवधि के दौरान आहार नाल की कार्य प्रणाली को पूर्णतया क्रियाशील बनाए रखने के लिए रेचक (मल को मुलायम करने वाला) आहार देना चाहिए। किन्तु ब्याने के 1 से 1.5 माह पूर्व भ्रूण के विकास में पर्याप्त तीव्रता आ जाती है इसलिए ग्याभिन भेड़ों को इस अवधि में अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इस अवधि के दौरान खिलाए जाने वाले खाद्य को भेड़ों के निर्वाह एवं पल रहे भ्रूण की आवश्यकतानुसार पोषक तत्वों की मात्रा एवं गुणवत्ता से भरपूर होना चाहिए। अच्छे चरागाह में चराई तथा भेड़ों की अवस्था के अनुसार 300 से 400 ग्राम रातिब मिश्रण प्रतिदिन प्रति भेड़ की पूरक खिलाई संस्तुति की जाती है। खिलाई–पिलाई में कोई भी परिवर्तन अनुकूलता बनाए रखने के लिए धीरे–धीरे करना चाहिए। पानी और खनिज मिश्रण आवश्यकतानुसार देना चाहिए। गर्भावस्था के अन्तिम दो माह में अच्छी गुणवत्ता का आहार खिलाने से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

1. भेड़ों और नवजात मेमनो में मृत्यु दर घट जाती है।
2. मेमनो का जन्म भार अधिक होता है तथा यह सुडौल एवं स्वस्थ पैदा होते है।
3. भेड़ों में बच्चा देने के बाद दूध उत्पादन में 100 से 150 ग्राम प्रतिदिन की वृद्धि होती है।
4. भेड़ों का सामान्य स्वास्थ्य ठीक रहता है।

### दुग्धावस्था में भेड़ों की खिलाई–पिलाई

दुग्धावस्था में भेड़ों की आहारीय आवश्यकताएँ गर्भावस्था की आवश्यकताओं की अपेक्षा अधिक होती हैं। अतः इन भेड़ों के लिए अपेक्षाकृत अधिक गुणवत्ता वाला आहार आवश्यक होता है। इन भेड़ों की अच्छी खिलाई–पिलाई से प्रारम्भिक और कुल दुग्ध उत्पादन प्रभावित होता है जिससे दूध पी रहे मेमनो की वृद्धि भी होती है। बाड़े पर खिलाई पद्धति में पाली गई भेड़ों को 1.5 से 2.0 किलोग्राम ताजी घास या दलहनी चारा और 16 से 18 प्रतिशत प्रोटीन वाला 200–300 ग्राम रातिब मिश्रण प्रति भेड़ प्रतिदिन खिलाना चाहिए। जबकि चराई पद्धति पर पाली जा रही भेड़ों को पर्याप्त पोषण हेतु चराई के अतिरिक्त 300–400 ग्राम रातिब मिश्रण प्रति भेड़ प्रतिदिन की दर से खिलाते हैं। जिसके फलस्वरूप इनका सामान्य स्वास्थ्य उचित रहता है तथा दूध देने की क्षमता बढ़ जाती है और दूध पी रहे मेमनो की वृद्धि दर एवं स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।

### अदुधारू एवं खाली भेड़ों का भरण–पोषण

अदुधारू (दूध न देने वाली) एवं खाली भेड़ें मुख्यतया गर्भावस्था अथवा दुग्धावस्था में होने वाली शारीरिक क्षति की भरपाई दूध सूख जाने पर करती है। इस अवस्था में भेड़ों का हारमोन तन्त्र उसे अगली गर्भावस्था एवं ब्यांत के लिए तैयार

करता है। यद्यपि चरागाहों की वनस्पति ही इन क्रिया कलापों के लिए पर्याप्त होती है तथापि प्रजनन ऋतु के 3–4 सप्ताह पूर्व प्रत्येक भेड़ को प्रति दिन 400 ग्राम रातिब मिश्रण पूरक खिलाई के रूप में खिलाया जाए तो अंडक्षरण एवं गर्भधारण दर में सुधार होने के कारण प्रजनन क्षमता में वृद्धि होती है। भेड़ों की इस प्रकार की पूरक खिलाई को 'फ्लसिंग' कहते हैं जिसमें अंडाशय में अधिक अंडों का निर्माण उद्दीपत होता है। इसके फलस्वरूप अधिक से अधिक अंडे निशेचित होते हैं और अपेक्षाकृत अधिक बच्चे पैदा होते हैं।

### वध करने से पूर्व नकारा भेड़ों की खिलाई–पिलाई

नकारा भेड़ों को खराब शारीरिक अवस्था के दौरान कम कीमत पर वध हेतु बेच दिया जाता है। प्रायः सभी भेड़ों का उनके उत्पादन चक्र के अन्त में वध कर दिया जाता है जबकि इन भेड़ों को अल्पावधि के लिए मंड आधारित आहार खिलाने से इनकी शारीरिक अवस्था में सुधार होता है। यह विधि आहार की कीमत के आधार पर भेड़ पालकों के लिए लाभकारी होने के साथ–साथ बाजार में अच्छी गुणवत्ता के मांस की आपूर्ति भी करती है। हमारे देश में वध की जाने वाली कुल भेड़ों में से लगभग 40 प्रतिशत भेड़ें नकारा वर्ग की होती हैं जिनका शारीरिक परिमाप, मांस उत्पादन तथा वसायुक्त लोथ कम होता है। इन उम्र दराज भेड़ों से प्राप्त मांस की संरचना प्रायः कठोर एवं रेशायुक्त होती है जिसे उपभोक्ता पसंद नहीं करता है। यूरोप के कई देशों में अनेकों अध्ययनों से पता चला है कि नकारा भेड़ों को अल्पावधि के लिए ऊर्जा युक्त आहार खिलाने से ये व्यवसाय लाभकारी होने के साथ–साथ लोथ की विशेषता एवं मांस की गुणवत्ता बढ़ाने में भी लाभदायक है। नकारा पशुओं को वध करने से पूर्व उनकी अल्पावधि के लिए खिलाई–पिलाई करने से मांस को काटने में प्रयुक्त शक्ति में कमी के साथ–साथ लचीलापन एवं घुलनशील कोलेजन की मात्रा में वृद्धि होती है तथा चर्बीरहित मांस में घुलनशील कोलेजन का प्रतिशत भी बढ़ जाता है।

नकारा भेड़ों को 2.5 प्रतिशत शारीरिक भार की दर से 90 दिनों तक उच्च ऊर्जा का आहार खिलाने से उनके शारीरिक परिमाण एवं लोथीय विशेषताओं में सुधार होता है। सामान्यतया नकारा भेड़ों की शारीरिक अवस्था खराब होने से उनकी शारीरिक अवस्था माप 2.5 से 2.8 के बीच होती है। इन भेड़ों को पर्याप्त एवं संतुलित आहार खिलाने से ये 30 से 45 दिनों में अपनी शारीरिक कमजोरी से उभर जाती हैं तत्पश्चात् इनका शारीरिक भार 20 से 30 प्रतिशत बढ़ता है एवं शारीरिक अवस्था माप 3.5 से 4.0 तक पहुँच जाता है। नकारा भेड़ों में चर्बीरहित मांस की गुणवत्ता कम होती है जिसके कारण लोथ अच्छा नहीं दिखता है किन्तु जब इन पशुओं को कुछ दिनों तक ऊर्जायुक्त आहार खिलाया जाता है तो उनकी मांसपेशियों में चर्बी एकत्र होने से लोथ अच्छा दिखने लगता है। नकारा भेड़ों में हड्डियों की मात्रा 25 से 30 प्रतिशत तक होती है जो ऊर्जायुक्त आहार खिलाने से घटकर 16–20 तक रह जाती है। इस प्रक्रिया को लाभकारी एवं खिलाई की अवधि कम करने के लिए कई पौषणिक हस्तक्षेप के प्रयासों में उच्च ऊर्जायुक्त आहार की खिलाई–पिलाई, गैर–प्रोटीन नत्रजन की खिलाई एवं रोमन्थ सुरक्षित वसा की पूरक खिलाई प्रमुख हैं। इन प्रयोगों का अत्यधिक आवश्यक पहलू खिलाई की लागत एवं इन पशुओं से प्राप्त शुद्ध आय हैं। प्रत्येक पशु को 90 दिनों तक आहार खिलाने की लागत प्रायः 900–1100 रुपये होती है जबकि उसकी बिक्री या वध करने पर आमदनी 1200–1500 रुपये होती है। इस प्रकार प्रति पशु शुद्ध आय 300–400 रुपये होती है।

उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार भेड़ों का भरण–पोषण करने से उनके रख–रखाव में कमी आती है। दुग्ध एवं भेड़ मांस उत्पादन में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप भेड़ पालक को अपेक्षाकृत अधिक लाभ होता है।

**भेड़ों के लिए सस्ता एवं पौष्टिक रातिब मिश्रण बनाने की विधि**

रोमन्थी पशुओं से समुचित उत्पादन हेतु उन्हें विभिन्न अवस्थाओं जैसे बढ़वार, गर्भावस्था, दुग्धावस्था आदि के दौरान रातिब या सान्द्र मिश्रण खिलाया जाता है। रातिब या सान्द्र मिश्रण उस मिश्रण को कहते हैं जिसमें विभिन्न खाद्य अवयवों को एक साथ समान रूप से मिलाया जाता है। अधिकतर किसान भाई अपने पशुओं को या तो खरीदकर या उनके पास उपलब्ध खाद्य अवयवों में से एक या दो को बांटे के रूप में खिलाते हैं जो मँहगे होने के साथ–साथ कम पौष्टिक भी होते हैं जबकि स्वयं बनाया गया रातिब मिश्रण सस्ता एवं पौष्टिक होता है।

| आवश्यक सामग्री | एक क्विंटल के लिए | पाँच क्विंटल के लिए |
|---|---|---|
| गेहूँ/जौ/ज्वार/बाजरा | 25 कि.ग्रा. | 125 कि.ग्रा. |
| क्षतिग्रस्त/खराब गेहूँ | 20 कि.ग्रा. | 100 कि.ग्रा. |
| गेहूँ की चापड़/भूसी | 18 कि.ग्रा. | 90 कि.ग्रा. |
| चावल की चापड़/भूसी | 10 कि.ग्रा. | 50 कि.ग्रा. |
| मूँगफली/सरसों/तिल की खली | 25 कि.ग्रा. | 125 कि.ग्रा. |
| खनिज मिश्रण | 1 कि.ग्रा. | 5 कि.ग्रा. |
| साधारण नमक | 1 कि.ग्रा. | 5 कि.ग्रा. |

**बनाने की विधिः**

सर्वप्रथम सभी खाद्य अवयवों की बताई गई मात्रा को तौल लेते हैं। इसके बाद बिना दले हुए खाद्य अवयवों को दल लेते हैं। अब सभी खाद्य अवयवों (पिसे हुए एवं दले हुए) को भली–भाँति दो तीन बार मिलाते हैं। इस प्रकार रातिब मिश्रण पशुओं को खिलाने हेतु तैयार हो जाता है। सभी पशुओं को उनकी आवश्यकतानुसार रातिब मिश्रण खिलाने से लाभ होता है।

**सावधानियाँः**

सभी खाद्य अवयवों की बताई गई मात्रा को तौल कर ही लें। कम मात्रा में मिलाए जाने वाले खाद्य अवयवों जैसे खनिज मिश्रण एवं साधारण नमक में पहले अन्य दले हुए खाद्य अवयवों की कुछ मात्रा मिला लें फिर इस मिश्रण को खाद्य अवयवों की अन्य मात्रा के साथ मिलाएँ।

**लाभः**

उपरोक्त विधि से बनाया गया रातिब मिश्रण बाजार से खरीदे गए रातिब मिश्रण या बाटा से सस्ता एवं अधिक पौष्टिक होता है। पशुओं के उत्पादन की लागत कम हो जाती है और किसानों को लाभ होता है।

# वर्षभर हरा चारा उगायें, पशु उत्पादकता बढायें

**सुरेश चन्द्र शर्मा, लीलाराम गुर्जर व रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी**

खेती के साथ–साथ पशुपालन भी किसानों की आय का मुख्य स्रोत है। पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादकता में हरे चारे का महत्वपूर्ण योगदान है। खली और दाना (रातिब) की कीमतें निरन्तर बढ़ रही हैं, ऐसी स्थिति में हरे चारे का विशेष महत्व है क्योंकि यह सस्ता व लाभप्रद है तथा इसमें सभी पोषक तत्व उपलब्ध होते है जो कि पशुओं की उत्पादकता के लिए आवश्यक हैं। देश के अधिकतर प्रदेशों में हरे चारे की कमी रहती है । इसका मुख्य कारण है कि कास्त भूमि पर चारे की खेती कम की जा रही है तथा प्रति इकाई क्षेत्र पर इसकी पैदावार भी कम मिल रही हैं। हमारे देश में सदियों से चली आ रही परम्परागत कृषि पद्धति को मिश्रित खेती कहा जाता है जिसमें फसल और पशु उत्पादन का समन्वय है। भूमि का अधिक दोहन होने के कारण वन और चरागाह क्षेत्र वनस्पति रहित हो चले हैं। कम और अनिश्चित वर्षा से लगातार सूखे की परिस्थितियां बनी रहती हैं। अतः यह आवश्यक है कि सिंचित भूमि की प्रत्येक जोत का कम से कम 5 से 10 प्रतिशत भाग पर हरे चारे की खेती करनी चाहिए। क्योंकि विगत दशकों में जनसंख्या के समानान्तर पशु संख्या वृद्धि के कारण कृषि योग्य भूमि के साथ–साथ चरागाह, वनों तथा अन्य प्रकार की भूमि पर काफी दबाव बढ़ा है। हरित क्रांति के पश्चात् उपलब्ध संसाधनों व चारा एवं अन्न उत्पादन में और गुणोत्तर वृद्धि अति कठिन है। ऐसी स्थिति में चारें की आवश्यकता और आपूर्ती में अन्तर दिनों दिन बढ़ता जा रहा है जिससे पशु उत्पादन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इस अवांछनीय अन्तराल को कम करने हेतु बहुउद्देशीय खेती अपनाकर यथोचित वैज्ञाानिक तरीकों से अधिकतम चारा उत्पादन कर सकते है। साधारणतया वर्ष में अप्रैल से जून तथा नवम्बर से दिसम्बर तक दो अन्तराल ऐसे होते है जिसमें हरे चारे की कमी सारे साधन होते हुये भी रहती ही है। इस अवधि में हरे चारे की उपलब्धता को बनाये रखने के लिए हरे चारे की उत्तम योजना सघन फसल चक्र तथा चारे की फसलों की उन्नत जातियॉ अपनाकर हरे चारे की कमी को पूरा किया जा सकता है।

**वर्ष भर हरा चारा केसे लें ?**

एक ही खेत में वर्ष भर हरा चारा प्राप्त करने की विधि लघु और सीमांत कृषकों के लिए विशेष उपयोगी है। इस प्रणाली से हरा चारा उगााने के लिए अनुमोदित सस्य क्रियाओं को अपनाकर अक्टूबर के पहले पखवाड़े में बरसीम और रिजका की बुआई करनी चाहिए। नवम्बर के अन्त से दिसम्बर के मध्य तक इन फसलों से हरा चारा मिलना शुरू हो जाता है तथा बरसीम और रिजका की तीसरी कटाई के तुरन्त बाद खेत में नेपियर (हाथी घास) की रोपाई कतारों में एक मीटर के अन्तर पर पौधे से पौधे की दूरी 50 सें॰ मी॰ रखते हुए करें। अप्रैल के अंतिम सप्ताह तक बरसीम की फसल समाप्त हो जाती है। इस समय तक हाथी घास पहली कटाई के लिए तैयार हो जाती है। बरसीम की अंतिम कटाई के बाद गर्मियों में लोबिया और ज्वार चरी की बुवाई करके चारा उत्पादन लिया जा सकता है।

मार्च में ज्वार, मक्का, बाजरा, ग्वार और चांवला की बुवाई करने से मध्य अप्रैल से चारा उपलब्ध हो जाता है। यदि मई में इन फसलों की बुवाई करें तो मध्य जून से चौले की उपलब्धता होने लगती है। जुलाई में चारा फसलों की बुवाई करने से सितम्बर–अक्टूबर में चारा मिल पाता है। सितम्बर में चाइनीज कैबेज, रिजका, जापानी रेप की बुवाई करने से नवम्बर–सितम्बर से चारा मिल पाता है। यदि हम अक्टूबर में जई, बरसीम और रिजका की बुआई करते हैं तो

सितम्बर से जून तक चारा मिलता है। नवम्बर में बरसीम, जई और रिजका लगाने से हमें जनवरी से जून तक चारा मिलता है। इस प्रकार चारा फसलों को उनके समयानुसार उगाने से साल भर हरे चारे की उपलब्धता बनाये रखी जा सकती है।

**वार्षिक चारा फसल चक्र :**

पशुओं को सालभर हरा चारा उपलब्ध करवाने के लिए उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए जिससे फसलों की संख्या में बढ़ोतरी करके प्रति हैक्टर क्षेत्रफल पर उगाई गयी चारा फसलों की उत्पादकता बढ़ाई जा सके तथा घास कुल की चारा फसलों के बाद दलहनी कुल की चारा फसलों को फसल चक्र में अलग–अलग बनायें क्योंकि भूमि व जलवायु भिन्न–भिन्न होने के कारण फसलों का चुनाव वातावरण के अनुसार करना अनिवार्य है। उत्तरी भारत में जो फसलें उगाई जाती है उन्हें दक्षिणी भारत में नहीं उगाया जा सकता है।

इसी प्रकार मध्य भारत में उगाई जाने वाली फसलों को देश के उत्तरी–पूर्वी भागों में नहीं उगाया जा सकता है। वस्तुतः फसलों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जहां पर चारा उगाया जाना है उस स्थान की परिस्थिति में कौन–सी फसल सर्वाधिक उपज देती है। फसल चक्र आवश्यकता के अनुसार हो तथा इसमें अदलहनी चारा फसलों के साथ दलहनी चारा फसलों का समावेश हो जिसमें भूमि की उर्वरता को बरकरार रखा जा सके तथा रासायनिक खाद की खपत को कम करके चारा फसलों को उगाने में आने वाली लागत को कम करके अधिक लाभ कमाया जा सकता है। वार्षिक चारा फसल चक्र में कम समय में तैयार होने वाली चारा फसलों का समावेश अति आवश्यक है।

रबी मोसम में कम पानी तथा कम समय में तैयार होने वाली चारा और दाना देने वाली चारा फसलें जैसे जौ और जई की खेती को प्राथमिकता देनी चाहिए। बरसीम, रिजका, मैथी व जई शरद्–ऋतु के हरे चारों में सर्वोत्तम है जिनको कम क्षेत्र में उगाकर ही पशुओं को काफी मात्रा में उत्तम हरा चारा उपलब्ध कराया जा सकता है। जो शरद्–ऋतु से ग्रीष्म–ऋतु के प्रारम्भ होने तक (दिसम्बर से मई तक) नियमित रुप से उपलब्ध होता रहता है। जहां सिंचाई के साधन और पानी की सुविधा है वहां जायद (गर्मियों) में खेत खाली रखने की बजाय चारा फसलें जैसे ज्वार, बाजरा व मक्का को शुद्ध और चौला तथा ग्वार के साथ मिश्रित फसलें उगाकर पशुओं को चारा उपलब्ध कराया जा सकता है। नागफनी का उपयोग अधिकतर खेतों की मेड़ पर बाड़ के रूप में किया जा सकता है। परन्तु इसमें कम कांटेवाली प्रजातियों का प्रयोग बाड़ के साथ–साथ पशुओं को खिलाने में किया जा सकता है। नागफनी पशुओं को खिलाने से पूर्व अच्छी तरह कुट्टी काटकर कड़बी या घास के साथ खिलाना चाहिए। भेड़ों में खाद्य अवयव के रूप में खिलाने पर करीब 3–4 कि॰ग्रा॰ अथवा सूखा करीब 800–1000 ग्राम तक खिलाया जा सकता है। इस प्रकार की खिलाई से पशुओं के दैह भार में कमी नहीं होती है। अतः अकाल ग्रस्त क्षेत्रों में पशुओं के भोज्य अवयव के रूप में नागफनी का प्रयोग किया जा सकता है।

**चारा पत्ती व फलियां :**

पेड़ों की पत्तियां हरे चारे का सर्वाधिक उपयुक्त वैकल्पिक आहार है। चारा वृक्षों के चुनाव में क्षेत्रीय जलवायु को ध्यान में रखा जाता है। अधिक शुष्क क्षेत्रों के लिए खेजड़ी तथा रोहीड़ा जैसे चारा वृक्ष उपयुक्त हैं। बेर एवं डाईक्रो जैसी चारा झाड़ियॉ भी ऐसे क्षेत्रों के लिए उपयोगी हैं। अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में अरडू, सिरस, नीम, देशी बबूल इत्यादि चारा वृक्ष अच्छी तरह से

जगाये जा सकते हैं। जिन्जा व डाईक्रो आदि चारा झाड़ियों को अरडू इत्यादि वृक्षों के बीच हरे व सूखे चारे की पैदावार हेतु लगाया जा सकता है। पर्याप्त विकसित होने के बाद वृक्षों की छंगाई करके उनकी हरी अथवा सुखी पत्तियों को चारे के अभाव के समय पशुओं को खिलाया जा सकता है ।

खेजड़ी तथा बबूल की विभिन्न प्रजातियों की फलियों को सांगरी या पातड़ी के नाम से जाना जाता है। इन फलियों में प्रोटीन की मात्रा लगभग 30–50 प्रतिशत होती है। प्रोटीन पशुओं के लिए अत्यन्त आवश्यक अवयव है ।

**विभिन्न प्रकार की झाड़ियां व खरपतवार :**

चेरी, झारबेरी, कैर, डाइक्रो, जींजा आदि चारा झाडियों को शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में आसानी के साथ उगाकर इनकी पत्तियों को हरे चारे के रूप में छोटे और बड़े जानवरों को खिलायां जा सकता है। मूज व कांस की कोमल पत्तियों की कुट्टी बनाकर पशुओं को आहार के रूप में दिया जा सकता है। गोखरू, झोझरू तथा कंटेली के पौधे हरी मुलायम अवस्था में अत्यन्त पौष्टिक होते हैं उन्हे पशुओं को हरे चारे के रूप में खिलाने हेतु उपयोग में लाया जा सकता है।

**गन्ने के अंगोले और सब्जियों के उत्पाद :**

गन्ने की पत्तियों व ऊपरी सिरे को कुट्टी करके जानवरों को हरे चारे के रूप में खिलायां जा सकता है। गाजर और मूली की पत्तियों, फूल गोभी तथा पत्ता गोभी की अतिरिक्त पत्तियों को पशुओं के लिए हरे चारे के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। ये पदार्थ गांवों में सहजता से मिल जाते है। इसके अलावा चरागाह पद्धति में उन्नत किस्म की घास का चरागाह स्थापित कर इसके मध्य चारा अथवा बहुपयोगी चारा वृक्ष लगाये जाते है। जिससे कि वर्ष भर चारा प्राप्त किया जा सकें। भू एवं जल संरक्षण की स्थिति में यथोचित सुधार आने पर और अधिक सघन पद्धति के रुप में चारा वृक्षों के बीच चारा झाड़ियॉ लगााकर प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक मात्रा में चारा प्राप्त किया जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में सेवण घास एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में धामण घास व अंजन घास चरागाह हेतु लगाई जाती है।

**विभिन्न चारे की फसलों को बोने व काटने का समय एवं उन्नत किस्में**

| फसल का नाम (उपज क्विं/है.) | सिंचित क्षेत्र बुआई का समय | उन्नतशील जातियाँ | चारा प्राप्त करने का समय |
|---|---|---|---|
| बरसीम (800 क्विं/है) | सितम्बर से मध्य अक्टुबर तक बीज दर 25–30 किग्रा./हेक्टेयर | मसकावी, खदरावी, पूसा जाइन्ट, टी–780, टी–726, टी–760, एस–99–1 (वरदान), बीएल–1, जेबी–1, बुन्देल बरसीम–2 | पहली कटाई बोने के 50–60 दिन में तथा बाद की कटाई 25–30 दिन के अन्तर पर करते हैं। |
| रिजका (800 क्विं/है) | मध्य सितम्बर से अक्टुबर तक बीज दर 20–25 किग्रा./हेक्टेयर | टाईप–9, आनन्द–1, एस–240, सलेक्सन–एस–54, NDRI , टाईप–8 | पहली कटाई बोने के 55–60 दिन में तथा बाद की कटाई 25–30 दिन के अन्तर पर करते हैं। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| जई<br>(500 क्विं/है) | अक्टुबर से दिसम्बर तक बीज दर 100 किग्रा./हेक्टेयर | कैंट, यूपीओ–94, ओएस–6, एनपी–1, हरियाणा जई, एनपी– (सूखा रोधी) कोचमेन, ओएल–125 | पहली कटाई बोने के 60 दिन में तथा बाद की कटाई 30–35 दिन के अन्तर पर करते हैं। |
| जौ<br>(400 क्विं/है) | अक्टुबर से दिसम्बर तक बीज दर 100 किग्रा./हेक्टेयर | ज्योति, DL -88, DL -472,] K -15, RS-6, RD -31, रतना, आजाद, नीलम | पहली कटाई बोने के 60–70 दिन में तथा बाद की कटाई 30–35 दिन के अन्तर पर करते हैं। |
| मेथी<br>(300 क्विं/है) | अक्टुबर से दिसम्बर तक बीज दर 20–25 किग्रा./हेक्टेयर | आर.एम.टी.–1, आर.एम.टी–143, NRCSS -AM -1] NRCSS -AM -2] एच.–103, RD -2052 ] पूसा कसूरी, हिसार सोनाली | पहली कटाई बोने के 60–70 दिन में तथा बाद की कटाई 40–50 दिन के अन्तर पर करते हैं। |
| सरसों<br>(300 क्विं/है) | अक्टुबर से नवम्बर तक बीज दर 10–12 किग्रा./हेक्टेयर | RL -18, PT -303, दुर्गामणी, कृष्णा, क्रांति, पूसा कल्याणी, पूसा बहार | पहली कटाई बोने के 60–70 दिन में तथा बाद की कटाई 40–50 दिन के अन्तर पर करते हैं। |
| ज्वार, हरा चारा<br>(450 क्विं/है)<br>कड़बी<br>(100 क्विं./है.) | मार्च से मध्य अगस्त तक बीज दर 30–40 किग्रा./हेक्टेयर | विदिशा 60–1, रियो, टाइप–4 (सूखारोधी), जेएस–20, पूसा चरी, | पहली कटाई बोने के 50–60 दिन में तथा बाद की कटाई 30–35 दिन |
| ज्वार, हरा चारा<br>(450 क्विं/है)<br>कड़बी<br>(100 क्विं./है.) | मार्च से मध्य अगस्त तक बीज दर 30–40 किग्रा./हेक्टेयर | विदिशा 60–1, रियो, टाइप–4 (सूखारोधी), जेएस–20, पूसा चरी, एमपी चरी, मीठी सूडान, MGSH -3, SPV -932 सीएसएच–15 | पहली कटाई बोने के 50–60 दिन में तथा बाद की कटाई 30–35 दिन के अन्तर पर करते हैं। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| मक्का, हरा चारा (450 क्विं/है) | मार्च से मध्य अगस्त तक बीज दर 40–50 किग्रा./हेक्टेयर | गंगा–2, गंगा–5, गंगा–7, गंगा–9, वीएल–42, तरूण, विजय, नवज्योति, अफ्रीकनटाल, किसान, विक्रम, पीली–2, पीली–20, मक्का–1006 | पहली कटाई बोने के 60–65 दिन में तथा बाद की कटाई 40–50 दिन के अन्तर पर करते हैं। |
| बाजरा, हरा चारा (300 क्विं/है) | मार्च से मध्य अगस्त तक बीज दर 8–12 किग्रा./हेक्टेयर | पूसा–322, एनबी–3, एनबी–17, एनबी–18, पीएचबी–12, पूसा मोटी, राज बाजरा चरी–2, अविका बाजरा–19 | बोने के 45 दिन में तथा कड़बी के लिए बोने से 80–90 दिन बाद |
| लोबिया, हरा चारा (250 क्विं/है) | मार्च से अगस्त तक बीज दर 20–25 किग्रा./हेक्टेयर | रसियन जाइन्ट, ई.सी.–4216, जवाहर लोबिया, आरसी–19 के–397, के–585, एचएफसी–42–2 | कटाई बोने के 70–80 दिन में |
| ग्वार (200 क्विं/है) | मार्च से अगस्त तक बीज दर 20–25 किग्रा./हेक्टेयर | IGFRI -212, 2395, RGC -936, 1003, 1002, HFCG -277, दुर्गापुरा सफेद, आरएसजी–936, बुन्देल ग्वार–2 व 3 | कटाई बोने के 70–80 दिन पर क्रते हैं |
| अंजन घास सूखा चारा (50–60 क्विं/है) | मध्य जून से अगस्त तक बीज दर 5–7 किग्रा./हेक्टेयर | IGFRI IS – 3108, IGFRI IS -3132, 33, CAZRI IS-357, 88m पूसा जाइन्ट | पहली वर्षा के 80–90 दिन के बद करते हैं। |

# भेड़ों के लिए आवास व्यवस्था

**विजय कुमार, कल्याण डे, अर्पिता महापात्रा, देवेन्द्र कुमार, कृष्णाप्पा बी. एवं राघवेन्द्र सिंह**

भेड़ बहुउपयोगी पशुधन है जो मनुष्यों को ऊन, दूध, माँस, जैसी उपयोगी वस्तुयें प्रदान करती है। गरीब किसानों और भूमिहीन किसानों का यह महत्वपूर्ण जीविकोपार्जन का साधन है विशेषतः देश के शुष्क, अर्द्ध–शुष्क एवं पर्वतीय इलाकों में। बदलती जलवायु एवं चारा/दाना की कम उपलब्धता में भेंड़ स्वयं को शीघ्र ही अनूकूल बना लेती है अतः इस दृष्टि से भेड़ गरीब किसानों के लिए अत्यंत लाभदायी साबित होती हैं। ये स्वाभाविक तौर पर चरागाह पशु है अतः इसे अधिक खर्चीली आवास–व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन और वैश्विक भूमंडलीय उष्मीकरण के फलस्वरुप पशुधन के आवास का वातावरण एवं स्थानीय जलवायु प्रभावित होती है जिससे पशुधन में गंभीर व्यावहारिक और शारीरिक परिवर्तनों को देखा जाता है। इस कारणवश उनकी उत्पादन क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है। अतः प्रतिकूल परिस्थितियों में इस पशुधन की जीविता और उत्पादकता को बनाए रखने एवं उन्नत करने के लिए आवास व्यवस्था एवं प्रबंधन की आवश्यकता होती हैं। भेड़ों के आवास के प्रकार मुख्यतः निम्नलिखित दो बातों पर निर्भर करते हैंः–

1. स्थानीय जलवायु, उसमें होने वाले बदलाव और उनकी तीव्रता (जैसेः वायु, तापमान, आर्द्रता, वर्षा, वायुगति और सूर्य विकिरण आदि)
2. भेड़ पालकों की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति/उनकी संस्कृति, शैक्षणिक स्तर, रीति–रिवाज और भेड़ पालन व्यवस्था (खानाबदोश प्रजाति आदि)

## भेड़ों के लिए मान्य आवास : डिजाईन एवं प्रकार

1. **स्थान** :– भेड़–आवास, किसान–आवास के निकट होना चाहिए परन्तु इतना दूर (न्यूनतम 10 मीटर की दूरी पर) अवश्य हो कि वहाँ से मेंगनी और भेड़ों की गंध किसान–आवास तक न आ सके। फर्श, जमीन से 1–1.5 मी. ऊँचा रहे और भविष्य में जरुरी निर्माण के लिए आवश्यक जगह भी रहे।
2. **पर्यावरण–तनाव कम करने के लिए आवास की दिशा** :–
   - सूर्य की तेज रोशनी में गर्मी से बचाने के लिए आवास की लंबाई पूर्व–पश्चिम की दिशा में बनाएँ
   - फर्श पर सूर्य की रोशनी की आवश्यकता जैसे कि नम इलाकों में, आवास उत्तर–दक्षिण दिशा वाला बनाएँ, जिससे कि कीटाणु मर जाए
   - आवास ऐसे स्थान पर बनाये कि वहाँ कम से कम 6 घटें तक सूर्य की रोशनी एवं प्राकृतिक प्रकाश आता रहे
3. **हवादार आवास** :– भेड़ों के आवास के सभी हिस्से में पर्याप्त ताजी हवा का प्रवाह होना चाहिए इससे आवास का तापमान नियमित करने में मदद मिलती है और भेड़ों के मूत्र से बनने वाली अमोनिया बाहर के वायुमंडल में चली जाती हैं। हवादार होने से भीतर का तापमान 25–30 डिग्री से. रखने में सहायता मिलती है। यदि ऐसा न हो तो गर्म और नम

आवास में, अचानक बदलते तापमान में, भेड़ों को न्यूमोनिया जैसे रोग हो जाते हैं। अतः भेड–आवास की ऊँचाई पर्याप्त हो और हवादार बनाने के लिए अनेक रोशनदान, झरोखे आदि दीवार/छत में बनाए हुए हो एवं जहाँ खुले बाड़े बने हो, वहाँ 1 मीटर ऊँची दीवार पर्याप्त है।

**आवास की निर्माण सामग्री**

भेड़–आवास की निर्माण सामग्री और डिजाईन कीमती नहीं होने चाहिए, स्थानीय निर्माण सामग्री से ही आवास बनाने चाहिए। ध्यान रहे कि आवास टिकाऊ हों।

**छतः** आवास की छत सूर्य की रोशनी से होने वाली गर्मी एवं बारिश से बचाव के लिए तिकोनुमा डिजाईन की बनाई जाती है। ऐसी छत में ढ़लान दी जाती है जिससे बारिश के पानी को नीचे बहने में मदद मिलती है। भूसे से बनी छत में ऐसी ढलान अधिक होनी चाहिए। छत में से पानी का रिसाव किसी भी हालत में नहीं होना चाहिए। ढ़लान के हिस्से की लंबाई इतनी अवश्य हो कि बारिश के पानी की फुहारे भी बाजुओं से अन्दर न आ सकें। छत लोहे की, लकडी/पत्थर/ईट/पट्टियों/भूसे आदि किसी की भी बनाई जा सकती है जो स्थानीय इलाके में उपलब्ध हो और सस्ती लागत के हों।

**दीवारेः** दीवारे सदैव पक्की बनाई जाएँ परन्तु उनमें हवा के आवागमन के लिए पर्याप्त खुले स्थान छोड़े जाएँ।

**फर्श** : कच्चा फर्श मिट्टी का बनाया जा सकता है कंकरीट वाला और स्लेटेट पक्का फर्श भी बनाया जा सकता है, पक्के फर्श में ढलान लंबाई की तरफ अवश्य दें। आवास के एक हिस्से में थोड़ी सी ऊँचाई पर प्लेटफार्म बना हो जिससे भेड़े मिंगनी और मूत्र से दूर, एक साफ स्थान पर आराम कर सके। रेत के फर्श में भेड़ों में खुर और लगड़ेपन की बीमारियों को रोकने में मदद मिलती है। स्लेटेट फर्श में प्रति स्लेट के बीच 1.4–1.6 सेमी का अंतर होना चाहिए, जिसमें मेगंनी, मल और मूत्र जा सके और भेड़ों में फिसलन कम हो। नवजात मेमनों और बढ़ते हुए मेंमनों को स्लेटेड फर्श पर नहीं रखना चाहिए। स्लेटेट फर्श के निम्नलिखित फायदे होते हैं।

1. बिछौने के सामान जैसे भूसे आदि की आवश्यकता नहीं होती
2. मल–मूत्र आदि का उचित एवं सफाई से विसर्जन हो जाता है जिससे भेड़ों में बीमारियो से बचाव होता है।
3. साफ – सफाई बनाए रखने में पारिश्रमिक कम लगता हैं।
4. मेंगनी आदि को खाद बनाने आदि के लिए बाड़े से प्राप्त करने में आसानी होती हैं।

स्लेटेट फर्श का प्रमुख नुकसान यह है कि इसके निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक लागत आती है बांस आदि की निर्माण सामग्री को काम में लेने से लागत में कमी लाई जा सकती है (जैसा कि सिक्किम, झारखण्ड, मेघालय, आसाम आदि में किया जा सकता है), परन्तु इनमें फिसलन की समस्या से भेड़ों को जूझना पड़ सकता है। बांस पर फिसलन को रोकने का उपाय रबड़ की शीट लगा कर कुछ हद तक कम किया जा सकता हैं।

**आवास में प्रति भेड़ के हिसाब से जगह**

भेड़–आवास में भेड़ों के अच्छे स्वास्थय एवं अधिक उत्पादन हेतु प्रत्येक भेड़ को आवश्यक न्यूनतम जगह अवश्य दी जानी चाहिए अन्यथा उनमें बीमारियां होने और चोट पहुंचने का भय बना रहेगा। भेड़–आवास के दो हिस्से होने चाहिए; एक

छत वाला तथा दूसरा इसके साथ लगा हुआ खुला बाड़ा। छत वाले हिस्से मे प्रत्येक भेड़ के लिए अनुमानतः 3 फुट × 3 फुट की जगह होनी चाहिए। खुले बाडे का आकार छत वाले हिस्से के आकार का लगभग दुगना होना चाहिए जिससे दिन में भेड़ें ताजी खुली हवा में चहल–पहल और व्यायाम कर सकें। समान्यतः आवास के माप का पैमाना नीचे दी गई सारणी के अनुसार होना चाहिए

| पशु | शरीर का वजन (कि.ग्रा.) | फर्श में जमीनी जगह | | | पानी पीने के डान की जगह (मी./पशु) |
|---|---|---|---|---|---|
| | | पक्का फर्श (मी./पशु) | स्लेटेड फर्श (मी./पशु) | खुला बाड़ा (मी./पशु) | |
| भेड़ | 35 | 0.8 | 0.7 | 2 | 0.35 |
| | 50 | 1.1 | 0.9 | 2.5 | 0.40 |
| | 70 | 1.4 | 1.1 | 3 | 0.45 |
| मेंमना | 30 | 0.4–0.5 | 0.3–0.4 | – | 0.25 –0.30 |
| मेंढ़ा | 80 | 3.0 | 2.0 | – | 0.5 |

**कठोर एवं असामान्य जलवायु में आवास**

1. **बांस का गुंबदनुमा आवासः**– बांस की टोकरी जैसे गुंबदनुमा आवास मेंमनों को रखने में मददगार होते हैं। अधिक सर्दी में इनमें सामान्य तापमान बनाएं रखने में मदद मिलती हैं। और ये मेमनों के शारीरिक विकास में भी मददगार होते हैं।

2. **शीत–एवं ताप अवरोधक आवासः**– भेड़ों को तेज गर्मी और सर्दी से बचाने के लिए इस प्रकार का आवास बनाया जा सकता है। ऐसे आवास में दीवार के आंतरिक हिस्से, दरवाजे एवं छत की पी.वी.सी. शीट के अन्दर, थर्मोकोल की शीटों को लगाया जाता है। ऐसे आवास में तेज गर्मी और सर्दी में बाहर का तापमान अन्दर के तापमान को प्रभावित नहीं कर पाता है।

1. **यज्ञनुमा आवासः**— इस प्रकार का अवास भेड़ों को अत्याधिक गर्मी से बचाने के लिए बनाया जा सकता है। यह बांस का बना, यज्ञनुमा आकार का, दो से तीन मंजिला दिखने वाला आवास होता है जिसमें से गर्म हवा ऊपर उठती है और बांसों के बीच दी गई खुली जगहों से बाहर चली जाती है, इससे भीतर का तापमान सामान्य बनाया रहता है। ईट की 2.5 से 3.0 फीट की ऊँची दीवार पर बांस का बना यज्ञनुमा आवास खडा किया जाता है जिन पर बीच–बीच में भूसे या टांटे की छत बना दी जाती है। दीवार बीच से खोखली होती है जिसमें रेत की परत भरी होती है। रेत की परत के उपर पानी के पाइप मे छोटे–छोटे छिद्र द्वारा लगातार बूंद–बूंद पानी टपकाया जाता है। इस प्रकार दीवारें गर्म नहीं होती और आवास में आने वाली हवा ठंडी होकर बहती हैं। इनमें रहने वाली भेडों का प्रजनन, स्वास्थ्य एवं उत्पादन, सामान्य आवास की भेड़ों से श्रेष्ठ पाया गया है।

# भेड़ व बकरियों के रोग : लक्षण, कारण, रोकथाम व उपचार

**चन्द्रप्रकाश स्वर्णकार**

वैज्ञानिक भेड़ पालन में प्रजनन, पोषण, रहन–सहन व्यवस्था एवं पशु स्वास्थ्य प्रबंध का समान महत्व है। स्वस्थ रेवड़ ही भेड़–पालन का प्रमुख आधार होता है अर्थात् भेड़ों की बीमारियों से सुरक्षा करके ही भेड़–पालक रेवड़ से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त कर समुचित लाभ कमा सकता है। पशु पालन के क्षेत्र में पशुओं को स्वस्थ रखने में रोगों से बचाव का उपाय ही सबसे सफलतम, विश्वसनीय व सस्ता तरीका है। भेड़–पालक यह बात अवश्य ध्यान में रखे कि पशु–स्वास्थ्य के संदर्भ में उपचार की तुलना में बचाव ही उत्तम रहता है। एक विशेष क्षेत्र में पाली गई भेड़ों में उस क्षेत्र के रोगों या रोगों के हानिकारण प्रभावों को सहन करने की क्षमता विकसित हो जाती है। वातावरण के बदलने से, अचानक आहार परिवर्तन करने से, साफ–सफाई का ध्यान नहीं रखने से रेवड् में बीमारियाँ होने की संभावना बढ़ जाती है। यह पाया गया कि राजस्थान के ग्रामीण रेवड़ों में स्वास्थ्य सम्बन्धी समुचित देखभाल के अभाव में लगभग 20–22 प्रतिशत भेड़–बकरी प्रतिवर्ष विभिन्न रोगों से ग्रस्त होकर मर जाती हैं एव साथ ही बीमारियों की उपस्थिति से रेवड़ की प्रजनन क्षमता, शारीरिक वृद्धि व उत्पादन क्षमता में असहनीय कमी से भेड़–पालकों को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। यदि भेड़–पालक रोगों से बचाव की सामान्य बातों का ध्यान रखें तथा समय–समय पर कुछ संक्रामक रोगों से बचाव हेतु टीकाकरण करवा लेवें तो इन रोगों से होने वाले नुकसान से शत–प्रतिशत बचा जा सकता है।

इसके अलावा भेड़–पालन के क्षेत्र में राजस्थान में यह पाया गया कि भेड़–पालक अंतःकृमिनाशक दवाओं का अंधाधुंध प्रयोग बिना चिकित्सक की सलाह के करते हैं जिसके फलस्वरूप अधिकतर दवाईयाँ निष्क्रिय होती जा रही हैं एवं इस प्रकार की दवाओं के प्रयोग से भेड़–पालकों के रेवड़ में किसी प्रकार का स्वास्थ्य सुधार नहीं होता है। संस्थान के पशु स्वास्थ्य विभाग में परजीवियों के जीवन चक्र, मौसम, चरागाह पर घास की उपलब्धता, दवाओं की क्रियाशीलता आदि का विस्तृत अध्ययन पर यह पाया गया कि एक साल के दौरान मात्र एक बार जरूरत पड़ने पर दुबारा अंतःकृमिनाशक दवा पिलाकर, रेवड़ को अंतःकृमियों से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है। इस व्यवस्था के अपनाने से अंतःकृमिनाशकों पर किए जा रहे अनावश्यक खर्च से भेड़पालक अपने आप को बचा सकते है। अतः भेड़–पालकों को बीमारियों से होने वाले नुकसान से बचने हेतु पशु–चिकित्सक की सलाह, अपनी सतर्कता व जागरूकता, समय–समय पर आवश्यक टीकाकरण व दवाकरण, सही दवा का चयन कर रेवड़ से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

### स्वस्थ एवं रोगी भेड़ की पहचान

रेवड़ में बीमार पशुओं की न केवल उत्पादकता में कमी आती है बल्कि ऐसे पशुओं की खुराक, उपचार, देखभाल व अन्य व्यवस्थाओं पर अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है। रोगी पशु की शीघ्रता से पहचान कर उपचार करने से होने वाले आर्थिक नुकसान को कम किया जा सकता है। रोग के प्रारम्भ होते ही लक्षणों के आधार पर अस्वस्थता का ज्ञान होता है। सामान्यतौर पर स्वस्थ एवं रोगी पशुओं की पहचान निम्नानुसार की जा सकती है–

| स्वस्थ पशु | लक्षण | अस्वस्थ पशु |
|---|---|---|
| पूरी इच्छा के साथ चरता है। जुगाली करता है। | भूख लगना व चारा–पानी खाना | भूख नहीं लगती, पशु चरना व जुगाली करना बंद कर देता है। |
| सभी पैरो पर समान दबाव से खडा होता है, चुस्ती व फूर्ती से चलता है, चौकन्ना रहता है तथा शरीर पर मक्खियाँ नहीं बैठने देता है। | खड़े होने व चलने का ढंग | सिर नीचा करके रेवड़ से अलग खडा होता है। पूँछ से मक्खियाँ नहीं उड़ा पाता है। सुस्त व निष्क्रिय (अनमना) दिखाई देता है बडी मुश्किल से चलता–फिरता है |
| नर्म, लचीली तथा चमकदार होती है। | त्वचा (चमड़ी) | सूखी, खुरदरी एवं बाल व ऊन में चमक नहीं होती है। |
| नाक पर हल्की नमी होती है। | नाक | सूखी, कडी, रुाव, खून या मवाद (पीव) युक्त होती है। |
| चमकदार, पूरी खुली हुई व साफ होती है। | आँखे | सिकुडी, धंसी हुई होती है तथा आँखों से पानी या पीव निकलता रहता है। |
| विशेष आकार की गोलियों के रूप में चमकदार व नर्म होती है। | मेंगनी | लेई के समान पतले दस्त, श्लेष्मा या रक्त मिश्रित, बदबूदार होती है। |
| भूसे के रंग का हल्का पीलापन लिए साफ द्रव होता है। | पेशाब | मूत्र में श्लेष्मा, रक्त का होना व गाढ़ापन हो जाता है। |
| 102 डिग्री फारनहॉट<br>70–90/मिनट नाडी दर<br>10–12/मिनट श्वसन दर | शरीर का तापमान, नाड़ी एवं श्वसन गति | तापमान, नाडी व श्वसन दर में बदलाव (घटत या बढ़त) |
| ऊन, दूध आदि का रंग व गुण सामान्य होते हैं। | उत्पादकता | दूध में खून के थक्कों की उपस्थिति दूध फट जाना, ऊन का टूट जाना व चमकहीन होना, |

बीमार भेड़ का पता लगाने के लिए भेड़–पालक को प्रतिदिन ध्यानपूर्वक अपने रेवड़ को बाड़े में से निकलते हुए देखना चाहिए जिससे अवस्थ भेड़ को अलग कर उसका सही समय पर उपचार करवा सके। भेड़–पालक को चाहिए कि वह रेवड़ से थोड़ा दूर खड़े होकर 4–5 मिनट तक लगातार सभी पशुओं को देखें तथा उनके खड़े होने का ढंग, चौकन्नापन, सक्रियता, चाल, कान व पूँछ की गति देखे।

पशुओं में होने वाले विभिन्न रोग, उनके कारण, लक्षण, उचार एवं रोकथाम के उपायों के बारे में भेड़–पालकों को समुचित व्यवहारिक जानकारी होना अति आवश्यक है जिससे भेड़ पालक रोगों द्वारा होने वाली हानि से बच

सकता है। भेड़ों को अनेक प्रकास से रोगाणु संक्रित करके बीमारियाँ पैदा कर देते हैं। इनके जीवाणु, विषाणु, फफूँदी एवं परजीवी आदि प्रमुख रोगाणु हैं। इन रोगाणुओं में से अनेक रोगाणु अकेले रोग पैदा करने में विफल रहते हैं परंतु विभिन्न प्रकार के तनाव पैदा करने वाली परिस्थितियों (जैसे अचानक वातावरण में बदलाव, अक्समात् आहार में परिवर्तन, बाड़े में क्षमता से अधिक भेड़ें रखना, कुपोषण होना आदि) के सहयोग से रोगाणु सक्रिय होकर पशु को बीमार करने में सफल हो जाते हैं। रोगाणुओं से उत्पन्न कुछ रोग अत्यन्त तेजी से फैलने वाले होते हैं जिनसे प्रभावित कई पशु बिना लक्षण के ही अचानक मर जाते हैं। इसके विपरीत कछ रोगों के लक्षण लम्बे समय तक दिखाई देते हैं। भेड़ों में होने वाली बीमारियों का संक्षेप में विवरण यहाँ दिया जा रहा है जिनको ध्यान में रखकर भेड़–पालक अपने रेवड़ में होने वाली बीमारियों की पहचान कर शीघ्रता से निकटतम पशु चिकित्सक से सलाह लेकर सही उपचार करवा सकता है।

**विषाणुओं से होने वाली रोग**

**भेड़ चेचक (माता रोग):**

भेड़ों में छूआछूत से फैलने वाले संक्रामक रोगों में से चेचक रोग एक प्रमुख विषाणु जनित रोग है। यह रोग हालांकि सभी नस्ल, लिंग व आयु के पशुओं को प्रभावित करता है परन्तु मेमनों में रोग की गंभीरता अधिक होती है। बीमार पशु के संपर्क में आने से चेचक तेजी से फैलता है तथा साल में कभी भी यह रोग हो सकता है। अधिकतर सर्दी के अंत में शुरू होकर वर्षा ऋतु के पूर्व तक चेचक रोग महामारी के रूप ले लेता है। इस रोग से प्रभावित भेड़ों मे तेज बुखार, आँख व नाक से पानी बहना, भूख न लगना, शरीर के ऊन रहित भागों जैसे आँखों के चारों ओर जाँघ की भीतरी तरु पेट व पूँछ के नीचे क्षेत्रों पर सर्वप्रथम लाल रंग के दानों का उभरना, धीरे–धीरे दानों का आकार बढ़ना व उनसे सफेद पानी या मवाद जैसा द्रव भरना तथा सप्ताह पश्चात् दानों का सूखना व खुरंड बन जाना प्रमुख लक्षण है। गर्भवती भेड़ों में गर्भपात तथा श्वांस सम्बन्धी परेशानी से उच्च मत्युदर (विशेष कर मेमनों में) होती है। इस रोग के प्रकोप के पश्चात् ऊन, मांस, दूध व खाल के उत्पादन में कमी होने से पशुपालक को काफी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। रोग की शंका होते ही उसके फैलाव को रोकने के लिए प्रभावित पशु को सबसे पहले रेवड़ से अलग कर दें। रोगी को चारा–पानी ऐसे व्यक्ति से करानी चाहिए जो स्वस्थ पशुओं के संपर्क में न आए। चेचक के उपचार हेतु लम्बे समय तक क्रियाशील रहने वाली एन्टीबायोटिक दवा का प्रयोग करना चाहिए।

चेचक रोग के प्रति पशु पालकों में भ्रांति पाई जाती है कि यह दैवीय प्रकोप है और इस रोग में किसी प्रकार का टीका नहीं लगाना चाहिए। परंतु वैज्ञानिक रूप से ऐसा नहीं है। इस रोग की रोकथाम हेतु सभी वयस्क भेड़ों को माता रोग के प्रतिरोधक टीके प्रतिवर्ष कार्तिक–मंगसर (नवम्बर–दिसम्बर) में लगवाने चाहिए। मेमनों में 2–3 माह की आयु पर पहला टीका एवं बाद में प्रतिवर्ष एक बार टीकाकारण करवाना चाहिए। रोग से मृत पशुओं तथा रोगी के बिछोने व खाने से बची सामग्री को कास्टिक सोडा या नमक के साथ जमीन में गहराई में गाड़ देना चाहिए या जला देना चाहिए।

**पीपीआर रोग:**

विगत 17–18 वर्षों से यह रोग महामारी के रूप में भेड़ व बकरियों में फैल रहा है। इस विषाणु जनित रोग से भेड़ों की तुलना में बकरियाँ अधिक प्रभावित होती हैं इस रोग के विषाणु सीधे सम्पर्क एवं सक्रमित चारा–पानी के द्वारा फैलते हैं। रोग का प्रकोप वर्ष में कभी भी हो सकता है परंतु वर्षाकाल व शीतकाल में इस रोग के प्रकोप की संभावना अधिक रहती है।

रेवड़ के अनेक पशुओं को तेज बुखार (104–1060 डिग्री फा.), नाक से पानी आना, होंठ/मसूढ़ों व मुँह के भीतर छाले या घाव होना, पतली लेई या पिचकारी की तरह निकले वाला बदबूदार खूनी दस्त लगना, शरीर में पानी की कमी होना, श्वांस लेने में कठिनाई एवं 3–4 दिन में रोगी की मृत्यु आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण है।

रोगी पशु में रोग का प्रकोप कम करने हेतु प्रभावित पशुओं को पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एन्टीबायोटिक, बुखार कम करने वाली व दस्तरोधी दवा 3–5 दिन तक देनी चाहिए। इस रोग की रोकथाम हेतु पीपीआर का टीका तीन वर्ष में एक बार लगाना चाहिए। मेमनों में यह टीका 4–5 माह की उम्र में लगाया जा सकता है।

**खुर–मुँह पका रोग (खुरसाडिया, सुगलिया)**:

यह छुआछूत से फैलने वाला विषाणु जनित रोग है। यद्यपि इस रोग से वयस्क भेड़ों की मृत्यु नहीं होती, परंतु शारीरिक कमजोरी होने से उनकी ऊन, मांस व दूध के उत्पादन में कमी हो जाती है। इस रोग में भेड़ों में तेज बुखार, मुँह तथा खुरों के बीच छाले या घाव हो जाने से पशु को चलने–फिरने व खाने–पीने में परेशानी होना, मुँह से लार गिरना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

उपचार हेतु रोगी पशु के मुँह व खुरों के घावों को लाल दवा (पोटेशियम परमेग्नेट) या फिटकरी के पानी से धोकर, खुरों के घावों पर एन्टसेप्टिक मलहम लगावें। पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एन्टिबायोटिक व बुखार कम करने की दवा से उपचार करें। प्रभावित क्षेत्रों में रोग से बचाव हेतु साल में दो बार (पोष–माघ तथा आषाढ–श्रावण माह में) नियमित रूप से सभी वयस्क भेड़ों को खुर–मुँह पका रोग का प्रतिरोधक टीका लगाना चाहिए। किसी क्षेत्र में रोग फैलने पर उस क्षेत्र के पशुओं का आवागमन नहीं करें, रोगी पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें, रोगी पशुओं को नदी, तालाब, पोखर आदि में पानी नहीं पीने देवें तथा रोगी पशुओं को सूखे स्थान पर रखें।

**ब्लूटंग (निर्लसना) रोग**:

यह विषाणु जन्य रोग क्यूलिकोईडिस नामक मच्छरों के काटने से फैलता है। इस रोग का प्रकोप नमीयुक्त गर्म मौसम तथा बंसत ऋतु में अधिक होता है। गीले, कीचडयुक्त क्षेत्रों, बहते पानी की धार के किनारे पर तथा गोबर–मिंगनी की प्रचुरता में विषाणु को संवहन हेतु मच्छर प्रजनित होते हैं। इस रोग से ग्रसित पशु में तेज बुखार, मुँह में छाले, मुँह के कोनों पर झाग, चेहरे पर सूजन, तेज श्वसन गति, श्वांस लेने में कठिनाई, लंगडापन होना, पशु का अगला पैर रूकना व चलने में परेशानी होना, लगातार कमजोर होना, गर्भवती भेड़ों में गर्भपात होना या गर्भस्थ विकलांगता होना तथा मेढ़ों के वीर्य में विकृति होने से रेवड़ की प्रजनन क्षमता मं कमी होना प्रमुख लक्षण हैं।

रोगी पशु को एन्टिबायोटिक, दर्दनिवारक एवं बुखार कम करने की दवा पशु चिकित्सक की सलाहनुसार 3–5 दिन तक देनी चाहिए। रेवड़ का मच्छरों के आक्रमण से बचाने हेतु बाड़ों के आस–पास साफ–सफाई का ध्यान रखें तथा मानसून व शरद् ऋतु में सुबह–शाम के समय रेवड़ के आस–पास नीम की पत्तियों को जलाकर धूआँ करें।

**जाडिया रोग (कांटेजियस एक्थाइमा)**:

विषाणु से होने वाली यह बीमारी सभी नस्ल, उम्र व लिंग की भेड़ों में होती है। वयस्क पशुओं की अपेक्षा मेमनों में यह रोग तेजी से फैलता है। नवजात मेमनों को यह रोग सामान्यतया बंसत ऋतु के समय अधिक फैलता है। रोग के विषाणु संक्रमित चारा–पानी एवं रोगी पशु के सम्पर्क में आने से फैलते हैं। बीमार पशु के होंठ, मुँह, आँख की पलकें, जीभ, तालू व

जबड़ों के कोने से लगी हुई त्वचा पर छाले/गुमडी हो जाती है। होंठों व जबड़ों के कोने पर मवादयुक्त घाव होने से पशु को पीडा होती है जिससे मेमने दूध पीना व चरना बंद कर देते हैं। फलस्वरूप उनकी शारीरिक वृद्धि रूक जाती है।

प्रभावित पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए तथा लक्षणों की तीव्रता के आधर पर पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एन्टिबायटिक दवा देनी चाहिए तथा घावों पर नीली दवा (जेसंन वायलेट) का 1.0 प्रतिशत घोल लगाना चाहिए।

**जीवाणुओं से होने वाले रोग**

**फड़किया रोगः**

जीवाणु से उत्पन्न जहर से होने वाला यह रोग रेवड़ में भेड़ों की अचनाक मृत्यु का सबसे बड़ा कारण माना जाता है। इस रोग का आगमन वर्षा ऋतु में नई, हरी–हरी रसीली घास की अत्यधिक उपलबधता के समय, रबी मौसम में फसलों की कटाई के पश्चात् खेतों में चराने से एवं असामयिक समय पर मौसम में बदलाव जैसे माघ–फाल्गुन माह में ओलावृष्टि होने पर से चने की फसल खराब होने पर उनका अचानक व अधिक मात्रा में सेवन करने से हाता है। यह भी देखा गया कि लम्बे समय तक पशुओं को पर्याप्त चारा/पोषण नहीं मिलने के पश्चात् अचानक भरपेट पौष्टिक आहार मिलने पर फड़किया रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोग से रेवड़ का स्वस्थ तथा मोटा–ताजा पशु सबसे पहले प्रभावित होता है। अधिक पौष्टिक आहार या घास खाने से आँतों में रह रहे फड़किया के जीवाणु एक विशेष प्रकार का जहर बनाना शुरू कर देते हैं। जैसे–जैसे यह जहर खून में पहुँचता है तो रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

प्रभावित रेवड़ में अचानक स्वस्थ पशुओं की मृत्यु होना, रोगी पशुओं की मांसपेशियों में खिंचाव, उत्तेजना से इधर–उधर कूदना, सिर को दीवार या खंबे से टकराना, मुँह से झाग निकलना, बैचेन होना, आकाश की तरफ सिर करना, दाँतों को किटकिटाना एवं एक ओर चक्कर लगाना जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। अंतिम अवस्था में रोगी भेड़ अर्ध–मूर्छित होकर जमीन पर गिर जाती है तथा लेटे–लेटे साईकिल चलाने की तरह टाँगे चलाता है और लक्षण प्रकट होने के 3–4 घंटे में मर जाता है। मृत पशु के शव परीक्षण पर गुर्दों का पिलपिला होना, दिल की ऊपरी सतह पर खून के धब्बे व हल्के पीले रंग का द्रव का पाया जाना महत्वपूर्ण लक्षण हैं। राजस्थान का जलवायु कृषि व पशुपालन पद्धति के आधार पर यह पाया गया कि रोग का प्रकोप होने की संभावना वर्ष में दो बार फाल्गुन व श्रावण माह में होती है । अतः रोग से बचाव हेतु फड़किया के टीके नजदीकी पशु चिकित्सालय में आवश्यक रूप से वर्ष में दो बार (छह माह के अंतराल पर) लगवाना चाहिए। मेमनों को तीन माह की आयु पर प्रथम व उसके 14 दिन बाद पुनः टीका लगवाना चाहिए। रेवड़ में रोग होने की स्थिति में भेड़–पालकों को चाहिए कि अगले सप्ताह तक रेवड़ की चराई कम से कम करावें। अधिक पोषक दाना–चारा नहीं खिलावें तथा अचानक चारे में परिवर्तन नहीं करें।

इस रोग के बारे में भेड़–पालकों मे कुछ भ्रांतियाँ भी पाई गई हैं। उनका सोच है कि नया चारा खाने से पशुओं के खून का बदलाव होता है जिससे फड़किया रोग हो जाता है। अंतःकृमिनाशक दवाएँ पशु का खून जलाती हैं जिससे फड़किया रोग नहीं होता तथा पशुओं के शरीर से खून निकाल देने से (कान काटकर) रोग का प्रकोप कम होता है। वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर फड़किया रोग से इन भ्रांतियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः पशु पालनक ध्यान रखें कि इय रोग जीवाणु के जहर

बनाने से होता है है तथा पशु के शरीर में खून की मात्रा निश्चित होती है। अतः पशु के शरीर पर अनावश्यक रूप से धाव न करें, केवल समय पर टीकाकरण व संतुलित आहार व्यवस्था से ही रोग से बचाव करें।

**जोंस रोग:**

यह भेड़, बकरी, गाय एवं भैंस में टी.बी. जैसे जीवाणु से होने वाला एक चिरकालिक (लम्बे सयम का) संक्रामक रोग है। इसका प्रकोप सामान्तया वयस्क पशुओं में ही दिखाई देता है। रोग के जीवाणु का संक्रमण मेमनों में रोगी मां के दूध से हो जाता है। यह रोग वर्ष में कभी भी हो सकता है किन्तु ब्यांत के समय, दुग्धावस्था के दौरान व कमजोरी बढ़ने पर रोग के लक्षण अधिक तेजी से दिखाई देते हैं। रोगी पशु की मेंगनी में मौजूद जीवाणुओं से चारा–पानी का लगातार संदूषण होने से यह रोग रेवड़ में एक पशु से दूसरे पशु में फैलता है। इस रोग से प्रभावित पशु खूब खाने के पश्चात् भी धीरे–धीरे कमजोर हो जाते हैं व रूक–रूक कर पतले दस्त होना प्रमुख लक्षण है।

इस रोग का कोई प्रभावी उपचार नहीं होने से रोग की रोकथाम व फैलाव हेतु रेवड़ के सभी पशुओं की मेगनी की समय–समय पर जाँच करवा कर प्रभवित पशु का वध करा देना ही सर्वोत्तम विधि मानी गई है। बाड़े की सफाई करके प्रभावकारी रासायनिक दवाओं जैसे सोड़ियम आर्थो–फिनायल फीनेट (1:200) का छिड़काव कराकर कुछ दिनों के लिए बाड़े को खाली छोड देना चाहिए। रोगी भेड़ की पहचान होने पर उसे रेवड़ से अलग रखें तथा चरागाह पर नहीं जाने देना चाहिए जिसमें जीवाणुओं का व्यापक संक्रमण नहीं हो।

**एन्थ्रेक्स (तिल्ली रोग):**

इस रोग का प्रकोप गर्म नम जलवायु क्षेत्रों में अधिक होता है। यह रोग सामान्यतया वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में होता है। नवजात पशुओं की अपेक्षा वयस्क पशु अधिक प्रभावित होते हैं। मिट्टी में उपस्थित रोग के जीवाणुओं को घास के साथ खाने से यह रोग होता है तथा मनुष्यों में भी इसका संक्रमण हो जाता है।

भेड़ों में यह रोग सामान्यतया अतितीव्र रूप में होता है जिससे रोगी पशु कभी–कभी लक्षण प्रकट होने से पहले या 1–2 घंटे की बीमारी में ही मर जाता है। प्रभावित पशु में तेज बुखार, उत्तेजना, पैर पटकना, सिर हिलाना, जुगाली बंद होना, मुँह व आँखों में नीलापन होना, मुँह, नाक व गुदा से खून बहना आदि प्रमुख लक्षण हैं।

रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पेनिसिलिन इंजेक्शन पशु चिकित्सक की सलाहनुसार लगाना चाहिए। इस बीमारी से मरे हुए पशु को गहरे गड्ढे में चूना या कास्टिक सोड़ा की परत के बीच गाढ़ देना आवश्यक है। किसी भी हालत में इस रोग से मृत मशु को खुले में नहीं फेंकें।

**टिटेनस (ताण की बीमारी):**

यह तीव्र व छूआछूत से नहीं फेलने वाला जीवाणु जनित रोग है जिससे छह माह तक के मेमनें सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। मेमनों के जन्म के समय नाभिनाल को टिंचर आयोडीन से उपचारित न करने, बधियाकरण व ऊन कतरन से बने घाव के उपचार पर समुचित ध्यान न देने पर रोग की संभावना बढ़ जाती है। बीमारी की शुरूआत में शरीर में अकड़न, चलने–फिरने में कठनाई, सिर व गर्दन का घनुषाकार की तरह खिंच जाना, दोनों जबड़ों का आपस में भिंच जाना व जमीन पर गिर जाना प्रमुख लक्षण हैं। रोग की रोकथाम हेतु बाड़े की उचित सफाई तथा नवजात मेमनों व वयस्क पशुओं के घावों

का सही उपचार करवाना चाहिए। रेवड़ में इस तरह का रोग बार–बार होने पर, गर्भावस्था के अंतिम अवस्था में टिटेनस टाक्साईड़ का टीका लगा देने से नवजात मेमनों में रोग की संभावना नगण्य हो जाती है।

**खुरलगनः**

भेड़ों में वर्षा के दिनों में होने वाली यह आम बीमारी है। यह रोग कम वर्षा वाले रेतीले क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक वर्षा, अत्यधिक गीले चरागाह में चरने तथा कीचड़युक्त बाड़ों में रहने वाले रेवड़ों में अधिक होता है। जीवाणुओं से होने वाला यह रोग शुरूआत में रेवड़ में एक या अनेक पशुओं के एक या अधिक पैरों में लंगड़ापन के रूप में आता है। कुछ समय पश्चात् खुर में कई दरारे व गड्ढ़े हो जाते हैं तथा अन्य जीवाणुओं के संक्रमण से घाव से मवाद आने लगती है। मवाद भर घास से मक्खियाँ आकर्षित होकर घाव में अण्डे दे देती हैं जिससे रोग की गम्भीरता बढ़ जाती है। बीमारी पर ध्यान न देने पर पशु में कमजोरी, वजन व उत्पादकता में कमी होने से काफी आर्थिक नुकसान होता है।

रोग से बचाव हेतु वर्षा के दौरान सप्ताह में दो बार नीला थोथा (10 प्रतिशत) के घोल से खुरों को धोवें तथा 2–3 मिनिट डुबोकर रखने से शीघ्र लाभ होता है। पशु चिकित्सक की सलाहनुसार लम्बे समय तक क्रियाशील रहने वाली पेनिसिलिन के इंजेक्शन तथा दर्द निवारक दवा दिलवानी चाहिए। बढ़े हुए खुरों को पहली बरसात के बाद काट देना चाहिए। बाड़े की सफाई तथा चरागाह में पानी का समुचित निकास होना चाहिए।

**न्यूमोनियाः**

यह एक प्रमुख रोग है जिससे सभी आयु के पशु प्रभावित होते हैं। पशुओं में अनेक प्रकार के विषाणु, जीवाणु, फफूँद एवं परजीवी न्यूमोनिया रोग पैदा करते हैं। इनमें से अनेक रोगाणु स्वयं न्यूमोनिया रोग पैदा कर पाने में असमर्थ होते हैं किन्तु किसी भी प्रकार के तनाव पैदा होने पर रोगरोधी क्षमता में कमी आते ही इस रोग की शुरूआत हो जाती है। प्रतिकूल मौसम में ऊन कतरने या ठंड के दिनों में खुली जगह पर पशुओं को रखने व बरसात से भीग जाने पर यह रोग ज्यादा होता है। इस रोग में पशु के फेफड़ों व श्वसन नलिका में संक्रमण के कारण सूजन हो जाती है जिससे पशु को श्वांस लेने में कठिनाई होती है। रोगी पशु में सुस्ती आना, कान लटक जाना, बुखार होना, नाक व आँख से पानी बहना, कभी–कभी नाक से खून बहना, भूख न लगना, खाँसी होना, लगातार कमजोरी आना व मृत्यु होना प्रमुख लक्षण है।

पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एंटीबायोटिक व बुखार कम करने वाली दवा 3–5 दिनों तक देनी चाहिए। पशुओं को प्रतिकूल मौसम (विशेषकर कार्तिक व माघ–फाल्गुन माह में सुबह व शाम को) बाड़े में हवा का आवागमन सही होना चाहिए तथा ऊन कतरन के पश्चात् रेवड़ को वर्षा में भीगने से अधिक ठंड से बचाना चाहिए।

**गर्भपातः**

पशुओं में गर्भपात अनेक संक्रामक रोगाणुओं से होता है। कुल गर्भपात में से लगभग 50 प्रतिशत असंक्रामक कारणों से होते हैं। जीवाणु जनित गर्भपात एक गम्भीर समस्या है क्योंकि जो भेड़ एक बार बच्चा गिरा देती है वह भेड़पालक के लिए अगले बच्चे तक भार बन जाती है जिससे भेड़ पालक को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। गर्भपात मख्यतः ब्रुसेलोसिस, विब्रायोसिस, साल्मोमेलोसिस व क्लोमाईडियोसिस जैसे जीवाणुओं के संक्रमण से होता है। पशु के खान–पान, रख–रखाव में कमी, जलवायु परिवर्तन, गर्भवती मादा को दूर तक परिवहन करने अथवा

विषाणु जनित रोग जेसे निर्लसना, माता, खुर–मुँहपका रोग, परजीवी जनित रोग जैसे टाक्सोप्लाजमोलिसस से भी गर्भपात हो सकता है।

रोगी भेड़ से जीवाणु बच्चेदानी के स्त्राव, मूत्र, गोबर, प्लेसेन्टा आदि के द्वारा बाहर निकलते हैं तथा स्त्राव से सने हुए चारा–दाना खाने, पशु की योनि चाटने, सम्भोग से, स्वस्थ पशु रोग ग्रसित होकर बार–बार बच्चा गिराता है। रोगी भेड़ के सम्पर्क द्वारा ये रोग मेढ़ें के जननांगों को प्रभावित करके उनको रोग ग्रसित कर देता है जो इस रोग के संवाहकर बन जाते हैं। इस रोग से होने वाले नुकसान से बचाने हेतु भेड़ पालको को ग्याभिन भेड़ों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि किसी भेड़ की योनि से खून या खून मिश्रित स्त्राव (मेला गिरना) निकलता दिखे तो गर्भपात की संभावना समझना चाहिए। रोगी मादा पर निगाह रखते हुए निम्न उपाय करने चाहिए।

- मरे हुए मेमनों (अविकसित) का पशु चिकित्सक से शव परीक्षण करवाना चाहिए ताकि गर्भपात के कारण का पता चल सके तथा मादा का सही उपचार हो सके।
- संक्रामक गर्भपात छूत की बीमारी हो सकती है अतः अन्य ग्याभिन मादाओं में संक्रमण से बचाव के उपाय करने चाहिए।
- भेड़ों के पोषण व रख–रखाव पर पर्याप्त ध्यान देवें।
- प्रजनन में प्रयोग होने वाले नर (मेढ़ें) के रक्त की जाँच समय–समय पर करा लेना चाहिए जिससे रोगाणु पूरे रेवड़ में फैलने का खतरा नहीं रहे। यदि मेढ़ां ब्रुसेलोसिस से ग्रसित पाया जाता है जो उसे तुरंत प्रभाव से रेवड़ से हटाकर वध करवा देना ही उचित रहता है।
- गर्भपात के उपरान्त जैर व अन्य स्त्राव को जमीन में दबा या जला देना चाहिए।

**कोलिबेसिलोसिसः**

यह रोग मुख्य रूप से मेमनों में 2–6 सप्ताह की उम्र में होता है। इस रोग से नवजात मेमनों में मृत्युदर सबसे अधिक होती है। मौसम तथा बाड़े में नमी तथा धूप की कमी होने पर इस रोग की संभावना बढ़ जाती है। अतः शीतकाल के अंतिम दौर में उत्पन्न हुए मेमनों में दस्त रोग होने लगता है। रोग की जीवाणु मुँह द्वारा पशु के शरीर में प्रवेश कर आँतों में रोग उत्पन्न करते हैं। मेमनों के जन्म के पश्चात् खीस नहीं पिलाने पर रोग की संभावना ज्यादा होती है।

रोगी मेमनों में पीले या भूरे रंग के पतले दस्त लगते हैं तथा कभी–कभी दस्त में खून भी आने लग जाता है। पेट दर्द होने से मेमनों की पीठ धनुषाकार हो जाती है। दस्त से सनी पूँछ प्रायः उठी रहती है। समय पर उपचार नहीं होने पर लगातार कमजोरी से मेमने खड़े नहीं रह सकते तथा 2–3 दिन में ही मृत्यु हो जाती है। रोग के जीवाणु को शरीर में संक्रमण फैलने से तेज बुखार आना, सिर को एक ओर झुकाना, पैरो में जकडन होना व चलने में कठिनाई होना, न्यूमोनिया के लक्षण होना, अचेत होना प्रमुख लक्षण है।

इस रोग से बचाव के लिए मेमनों को जन्म के पश्चात् खीस पिलाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जन्म के दो घंटे के अन्दर प्रत्येक नवजात को 60 से 120 मिली. खीस पिलाना चाहिए। जहाँ तक संभव हो प्रसव खुले स्थान पर होने देना चाहिए तथा बाड़े में पर्याप्त हवा व धूप आने की व्यवस्था रखें। रोग के लक्षण दिखाई देने पर पशु चिकित्सक की सलाह पर एन्टीबायोटिक दवा व जीवन रक्षक घोल से उपचार करवाना चाहिए तथा रोगी मेमनों को सीमित मात्रा में दूध पिलाना चाहिए।

**परजीवी जनित रोग**

भेड़–बकरियों में अनेक प्रकार के आंतरिक व बाह्य परजीवी पाए जाते हैं। पशुओं पर परजीवी रोगों का प्रभाव मौसम व जानवर की उम्र आदि के अनुसार होता है। सामान्यतया शारीरिक रूप से कमजोर व कुपोषण की दशा में परजीवियों का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। आंतरिक परजीवी शरीर के अंदरूनी अंगों (जैसे आहारनाल, यकृत, फेफड़े) खून व उत्तकों में तथा बाह्य परजीवी शरीर के उपर त्वचा पर आक्रमण करके न सिर्फ पशु को बीमार करते हैं परन्तु विभिन्न प्रकार के रोगों को फैलाने में भी सहायक होते हैं।

**आंतरिक परजीवी**

भेड़ों की जमीन से सटकर चारा चरने की आदत से इनमें अंतःकृमियों का संकमण अत्यधिक होता है तथा सामान्य भाषा में भेड़ों को परजीवियों का संग्राहलय भी कहा जाता है।

गोल कृमिः पशुओं के पेट एवं आँतों में विभिन्न प्रकार के गोल कृमि पाए जाते हैं। ये कृमि पशुओं का रक्त चूसने के साथ–साथ अंगों में सूजन व जलन पैदा करते हैं जिससे पशु की खुराक कम हो जाती है तथा शरीर का वजन दिन–प्रतिदिन कम होने लगता है। शरीर में रक्त की कमी, जबड़े के नीचे व गले में सूजन (गलसूजा) दाँत किटकिटाना, शरीर में खनिज तत्वों की कमी होने से पशु द्वारा मिट्टी या अन्य न खाने वाली वस्तुएँ (जैसे कागज, पालिथन, चमडा आदि) खाना प्रमुख लक्षण हैं। राजस्थान सहित पूरे भारतवर्ष में सबसे अधिक हानिकारक गोलकृमि द्वारा पशु अत्यधिक रक्त चूसन के कारण आँखों की प्रतिक्रिया सफेद (एनिमिया) हो जाती है।

इन कृमियों से होन वाले नुकसान से बचने हेतु इनका प्रभावी नियंत्रण आसानी से किया जाता है। यह पाया गया है कि भेड़ पालक एक वर्ष में 3–4 बार अंतःकृमिनाशक दवा पिलाते हैं जो कि एक अनावश्यक खर्च है। केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान द्वारा राजस्थान में किए गए सर्वेक्षण, अनुसंधान व प्रदर्शन के नतीजों के आधार पर सभी भेड़ पालकों को सलाह दी जाती है कि गोल–कृमियों के प्रभावी नियंत्रण हेतु वर्ष में एक बार (रक्षा बंधन के आस–पास) मानसून के मध्य में सही प्रकार की अंतःकृमिनाशक दवा पिलानी चाहिए। मानसून की अवधि ज्यादा होने पर मिंगनियों की जाँच के आधार पर रेवड़ की कुछ ही भेड़ों को सर्दी शुरू होने के वक्त दवा पिलाने की आवश्यकता हो सकती है। अतः इस व्यवस्था को अपनाने से अंतकृमियों पर किए जा रहे अनावश्यक खर्च से भेड़ पालक अपने आप को बचा सकते हैं।

**एम्फिस्टोमसः**

ये कृमि चने के आकार व गुलाबी रंग के होते हैं तथा सामान्यतया भेड़ के बड़े पेट में पाए जाते हैं। इन कृमियों की अवयस्क अवस्था अधिक हानिकारक होती है। इन कृमियों से ग्रसित भेड़ को तीव्र दस्त लगते हैं तथा जबड़े के नीचे सूजन

आ जाती है। शरीर में रक्त व पानी की कमी हो जाती है। इस रोग का प्रकोप गर्मियों का संक्रमण तालाब नदी में पाए जाने वाले पौधों से संक्रमित घास के खाने से होता है।

**यकृत कृमि (लीवर फ्लूक)**:

ये कृमि पत्ति के आकार के होते हैं तथा पशु के यकृत (जिगर/लीवर) में पाए जाते हैं। पानी से मिलने वाले घोधां इस रोगाणु के फैलाव के लिए आवश्यक होता है। तालाब व नदी के किनारे पर उगी हुई घास पर चरने से इनका संक्रमण तेजी से बढ़ता है। इन कृमियों द्वारा पित्त की नलिका में सूजन व यकृत को जख्मी करने से रोगी पशु को भूख का न लगना, शरीर में खून की कमी होना, पीलिया होना, शारीरिक वजन कम होना तथा गलसूजा होना प्रमुख लक्षण हैं।

प्रभावित रेवड़ में लक्षण दिखाई देने पर मेंगनी की जाँच करवाकर, स्थानीय पशु चिकित्सक की सलाहनुसार आक्सीक्लोजेनाईड, रेफोक्सानाईड, ट्राईक्लेबेन्डेजोल आदि दवा एम्फिस्टोमस के लिए मार्च–अप्रेल माह में तथा यकृत कृमि के लिए अक्टुबर माह में देनी चाहिए। रोग की रोकथाम हेतु पशुओं को दलदली व तालाब के पास वाले चरागाह में विशेषकर सुबह व शाम के समय नहीं चराना चाहिए।

**रक्त कृमि**:

ये धागे नुमा कृमि पशु की आँतो की रक्त नलिकाओं में पाए जाते हैं तथा इनका संक्रमण, त्वचा द्वारा या संक्रमित चारे–पानी से होता है। त्वचा द्वारा संक्रमण होने पर पशु के मुँह व नाक पर छाले के समान घाव हो जाते हैं । वयस्क कृमि द्वारा प्रभावित भेड़ में पीलिया के लक्षण दिखाई देते हैं। पशु के पेशाब का रंग लाल हो जाता है, मिंगनिया सूखी हुई होती हैं तथा यकृत में नुकसान होने से रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। इन कृमियों के उपचार हेतु प्राजिक्विटंल नामक दवा का उपयोग पशु चिकित्सक की सलाहनुसार किया जा सकता है।

**फीता कृमि**:

कपडा नापने के फीते समान लम्बे (कुछ धागे जैसे लम्बे) कृमि आमतौर पर पशुओं में चारे के द्वारा फैलते हैं। इन कृमियों की संक्रमण होने पर इनके टुकड़े कट–कट कर मेंगनी के साथ शरीर से बाहर निकलने लगते हैं। ये कृमि पशु की आँतों में निवास करते हैं जिससे पशु की आँतो द्वारा पोषक पदार्थों का अवशोषण करने की क्षमता में कमी हो जाती है तथा प्रभावित पशु विशेषकर मेमने कमजोर हो जाते हैं तथा पेट के नीचे पानी भरा प्रतीत होने लगता है। इन कृमियों के उपचार सामान्य रूप से कान के लिए जाने वाली अंतःकृमिनाशक दवा जैसे बेनजिमिडेजोल आदि काम में ली जाती है।

**अंतःकृमिनाशक दवा के प्रयोग में निम्न बातों को ध्यान रखना चाहिए**

अंतःकृमिनाशक दवा के अनावश्यक, अनियमित व बार–बार प्रयोग से या एक ही तरह की दवा को साल दर साल पिलाने से परजीवियों पर उनका असर कम होता जा रहा है। भेड़ पालकों को ध्यान होगा कि विगत 15–20 सालों पहले पिलाई जाने वाली बहुत सी दवाएँ मनमानी तरीके से पिलाते रहने के कारण बेकार हो गई। इसलिए अंतःकृमिनाशक दवा का चुनाव व पिलाने का समय निश्चित करने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- राजस्थान की जलवायु के अनुसार मानसून के मध्य में (रक्षा बंधन के आस–पास) एक बार सही अंतःकृमिनाशक दवा देनी चाहिए। अर्ध–शुष्कीय क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार मेंगनियों की जाँच के आधार पर अक्टूबर माह में प्रभावित भेड़ों को पुनः दवा पिलानी चाहिए।

- एक साल में एक ही प्रकार की दवा का प्रयोग रेवड़ में करें। कभी भी दो तरह की दवाएँ आपस में मिलाकर नहीं पिलावें।

- दवा का प्रकार पशु चिकित्सक की सलाह से प्रत्येक साल में बदल देंवें।

- दवा की मात्रा तय करने हेतु भेड़ के वजन का सही अंदाज लगाकर सबसे भारी भेड़ के अनुसार ही पूरे रेवड़ को (मेमनों के अलावा) अंतःकृमिनाशक दवा पिलावें। भेड़ पालक ध्यान रखें कि कभी भी दवा की मात्रा कम नहीं करें।

- प्रायः यह देखा गया कि रेवड़ में दस्त का प्रकोप या गलसूजा होने पर एवं यहाँ तक कि किसी भी प्रकार की बीमारी होने पर भेड़ पालक स्वयं के स्तर पर दवा विक्रेता की सलाह से सर्वप्रथम अंतःकृमिनाशक दवा देते रहते हैं। अतः यह ध्यान में रखें कि दस्त लगना, कमजोरी होना, गलसूजा होने के कारण पेट व आँतों के कीड़ों के अलावा अन्य बीमारियाँ भी होती हैं। इसलिए जहाँ तक संभव हो सके रेवड़ में लक्षण दिखाई देने पर मिंगनियों की जाँच के पश्चात् केवल पशु चिकित्सक की सलाह से ही अंतःकृमिनाशक दवा देवें।

- दवा पिलाने के दिन से 7 दिन पहले पशु को सूखा चारा खिलाने तथा दवा पिलाने के 18–24 घंटे पहले की पशु की चराई बंद करने से अंतःकृमिनाशक दवा अधिक देर तक प्रभावी होती है।

- अंतःकृमिनाशक दवा पिलाने हेतु काँच की शीशी की जगह प्लास्टिक की सीरिज का प्रयोग करना ज्यादा उपयुक्त रहता है। इससे दवा की खुराक सही मात्रा में जीभ के पिछले हिस्से पर छोड़ देने से दवा का सही असर होता है।

**काक्सीडियोसिसः**

यह रोग मेमनों में विशेष प्रभाव दिखाता है जबकि वयस्क पशुओं में रोग के लक्षण उत्पन्न किए बिना रोगाणु आँतों की कोशिकाओं में रहते हैं। इस रोग की परजीवी संक्रमित चारा–पानी के साथ पशु के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। प्रभावित मेमनों में सुस्ती, कम भूख, पेट दर्द, दस्त शरीर का पिछला भाग व पूँछ मल से सना होना तथा शरीर में पानी की कमी होना प्रमुख लक्षण होते हैं। उपचार हेतु पशु चिकित्सक की सलाह से सल्फामेजाथीन, एम्प्रोलियम, फ्यूराजोलिडोन आदि कोक्सीडियारोधी दवाएँ कम से कम 5 दिन तक लगातार देनी चाहिए। रोग का संक्रमण रोकने हेतु बाड़े की नियमित सफाई करना तथा बाड़े में पशुओं की संख्या को सीमित रखना आवश्यक है।

**बाह्य परजीवीः**

ये परजीवी भेड़ों की त्वचा पर निवास करते हैं जिससे त्वचा रूखी–सूखी हो जाती है तथा ऊन गिरने लगती है। इनसे प्रभावित पशु सुस्त हो जाते हैं व परजीवी द्वारा रक्त चूसने के कारण पशुओं में एनिमिया, कमजोरी, बैचौनी, ठीक से

चारा–दाना नहीं खा पाना, उत्पादन में कमी होना प्रमुख लक्षण हैं। भेड़ों में पाए जाने वाले प्रमुख बाह्य परजीवी जनित रोग निम्न प्रकार हैं:

**खाज (खुजली / कराडी)** :

अत्यन्त छोटे–छोटे कीड़ों या बरूथियों (माइट्स) से उत्पन्न यह एक संक्रामक रोग है जो रोगी पशु से स्वस्थ पशु में संपर्क से फैलता है। इस राग से ग्रसित पशु की त्वचा पर छोटी–छोटी लाल फुंसियाँ हो जाती है जो धीरे–धीरे सफेद व चिपचिपे खुरंड से ढ़क जाती है। रोगी के शरीर से ऊन गिरने लगती है तथा चमड़ी मोटी व खुरदरी हो जाती है। शरीर में अत्यधिक खुजली होने से प्रभावित पशु ठीक से चारा–पानी नहीं ले सकता जिससे वह लगातार कमजोर होने लगता है। कराडी के लक्षण चेहरे पर, नाक के ऊपर होते हैं जबकि शरीर की खाज पैरों से लेकर पूरे शरीर में कहीं भी हो सकती है। यदि रोग से शरीर का थोड़ा हिस्सा प्रभावित हो तो इस रोग से उपचार हेतु मेलाथियान, साइपरमेथ्रीन (0.05 प्रतिशत) को वेसलीन में मलहम बनाकर प्रभावित भाग पर सप्ताह में तीन बार लेप करना चाहिए। अन्य दवाएँ पशु चिकित्सक की सलाह से लगाई जा सकती है। रोगी के पूरे शरीर में खाज होने पर उसे कीटनाशक दवा के पानी से नहलाना ही उपयुक्त रहता है।

**जूएँ**:

पशु के शरीर पर इनकी अधिकता से रोगी में खून की कमी (एनिमिया) हो जाती है तथा पशु की शारीरिक वृद्धि रुक जाती है। प्रभावित पशु की चमड़ी खुरदरी हो जाती है एवं जगह–जगह से ऊन गिरने लगती है। उपचार व रोकथाम हेतु पशु को मेलाथियान, साइथियान, साईपरमेथ्रिन को घोल से 15 दिन के अंतराल पर दो बार नहलाना चाहिए।

**चीचड़ों का प्रकोप**:

भेड़ों के शरीर पर पाए जाने वाले चीचड़ों का जीवनकाल अधिकतर पशु के शरीर पर ही व्यतीत होता है। प्रजनन क्रिया के पश्चात् मादा चीचड़े पशु का खून चूस कर जमीन पर गिर जाती है तथा दीवारों पर दरारों व जमीन के अंदर अण्डे देती है। इन अण्ड़ों से लार्वा निकल कर शरीर पर चढ़ जाते हैं। लगातार खून चूसने से पशु में बैचेनी व खून की कमी हो जाती है। इसके अलावा चीचड़ों द्वारा कई प्रकार की अन्य बीमारियाँ जैसे थिलेरियोसिस, वेबेसियोसिस, आदि की एक पशु से दूसरे पशु में फैलाते हैं। चीचड़ों से छुटकारा पाने हेतु साइथियान (0.1 प्रतिशत), डाएजिनान (0.05 प्रतिशत), साइयरमेथ्रिन (0.025 प्रतिशत) आदि दवा का प्रयोग प्रभावित जगहों पर (पूँछ के नीचे, मूतनी के आस–पास, कान के अन्दर जाँघ की अंदरूनी सतह) पर करना चाहिए। इसके साथ ही बाड़ों में स्वच्छता बनाएँ रखे तथा दीवारों में दरारों को समय–समय पर बंद करें।

**नाक के कीड़े (लटों) का प्रकोप**:

यह रोग एक प्रकार की मक्खी द्वारा नाक के पास अण्डे देने पर होता है। अण्डों द्वारा लार्वा (लट) बनने के पश्चात् यह नाक के रास्ते सिर की तरफ चढ़ती चली जाती है जिससे नाक में खुजली व जलन होने से प्रभावित भेड़ की नाक तेजी से बहती है। बार–बार छीकें आती हैं व छींक के साथ कभी–कभी लट भी जमीन पर गिरती हैं। लगातार बैचेनी के कारण पशु का स्वास्थ्य गिरता जाता है। रोग के उपचार हेतु रोफेक्सेनाईड़, क्लोसेटेल या आइवरमेक्टिन जैसी दवाओं का प्रयोग अप्रेल–मई माह में करना चाहिए।

**प्रमुख असंक्रामक रोग**

**अपच**: पशुओं में खाने के प्रति अरूचि होना अपच रोग का प्रमख लक्षण है। पशु के पेट में अपच का होना मौसम के बदलाव के अनुसार उपलब्ध घास–चारा के प्रकार व गुणवत्ता पर निर्भर है। फफूँदयुक्त काला पड़ा हुआ चारा–दाना खिलाने से यह रोग प्रायः हो जाता है। गर्मियों के मौसम में हरा चारा उपलब्ध नहीं होने के कारण सूखा चारा खाने पर पशु में क्षारीय अपच होती है जबकि अन्य मौसम में हरा चारा खाने से अम्लीय अपच होती है।

इस रोग से ग्रसित पशु में सुस्ती आना, खाने के प्रति अरूचि होना, जुगाली करना बंद हो जाना एवं हल्का कब्ज का अफारा होना प्रमुख लक्षण है। इस रोग के उचार हेतु पशु चिकित्सक की सलाहनुसार पाचक चूर्ण व पेट तथा आँतों की गति बढ़ाने हेतु गोली देनी चाहिए। प्रभावित पशु को पर्याप्त मात्रा में पानी पिलाना चाहिए।

**कब्ज**: भेड़ द्वारा अत्यधिक मात्रा में कठोर चारा या भूसा खाने से या अचानक चारा बदलने से तथा पानी कम पिलाने से यह रोग होता है। रोगी पशु की भूख खत्म हो जाती है, जुगाली करना बंद हो जाता है, पेट के बाँयी कोख को मुट्ठी से दबाने पर पेट चारे से भरा व कड़ा होने का आभास होता है तथा कोख पर मुट्ठी का निशान काफी देर तक बना रहता है। आँतों में मिंगनियाँ जम जाने से पशु द्वारा काफी जोर लगाने के बाद ही सूखा या कडा मल निकल पाता है। उपचार हेतु रोगी भेड़ को चिकित्सक की सलाह से इम्पेक्टजन पाऊडर (20 ग्राम) व रूयूमटोन या बायोबूस्ट की एक गोली 2–3 दिन देना चाहिए। गम्भीर अवस्था में पेट में एंटीबायोटिक व एविल का इंजेक्शन लगवाना चाहिए।

**अफारा**: रोगी के पेट में गैस एकत्रित होने से पेट फूलने को अफारा कहते हैं। अधिक मात्रा में हरा दलहनी चारा–घास या दाना खिलाने से या आहार नली में रूकावट होने से यह रोग होता है। प्रभावित पशु को बैचेनी व सांस लेने में कठिनाई होती है। रोगी की बाई कोख में गोलाकार उभार हो जाते हैं जिसे हथेली से थपथपाने पर ढोल की तरह आवाज आती है। अत्यधिक पेट फूलने से, फेफेड़ों पर दबाव बढ़ जाता है जिससे पशु की आँखे बाहर निकली हुई व नीली दिखाई देती हैं। समय पर सही उपचार नहीं मिलने पर मृत्यु भी होती है। प्राथमिक उपचार हेतु प्रभावित पशु के मुँह में एक इंच मोटी गोल लकड़ी का डंडा जबड़ों के बीच डालकर उसके दोनों सिरे पर रस्सी बाँधकर कान के पीछे बाँध देवें जिससे पशु मुँह से श्वांस ले सके। घर में उपलब्ध हींग (5 ग्राम) व तारपीन या खाद्य तेल (50 मिली) को मिलाकर पशु को पिलाने पर लाभ मिलता है। आवश्कतानुसार पशु चिकित्सक की सलाह से चूर्ण (टिम्पोल) या ब्लोटोसिल (20 मिली) या अन्य दवा देनी चाहिए। रोग की रोकथाम हेतु दलहनी व हरा चारा अधिक मात्रा में नहीं खिलाना चाहिए तथा खुराक में अचानक परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

**दस्त** : विभिन्न प्रकार के रोगाणुओं के संक्रमण एवं प्रदूषित आहार से आँतों में सूजन होने से पशु को बार–बार पानी जैसे पतले खून व आँव मिश्रित दस्त आने लगते हैं। पशु सुस्त जो जाता है एवं पतले, दुर्गंध युक्त मल से पिछले पैर व पूँछ सने रहते हैं। शरीर में पानी की कमी होने से रोगी पशु कमजोर व थका–थका सा लगता है। उपचार हेतु सामान्य दस्त होने पर नेबलोन (10 ग्राम) जैसे दस्तरोधी पाऊडर सादे पानी या चावल की मांड में मिलाकर 2–3 दिन तक देना चाहिए। इसके साथ ही पेसुलिन, डाइरोक, सिप्रोटीजेड आदि दवा भी उपयोगी साबित होती है। गम्भीर अवथा में रोगी के शरीर में पानी व अन्य तत्वों की कमी दूर करने हेतु नस में इलेक्ट्रोलाईट, रिगंरलेक्टेट आदि तरल औषधियाँ पशु चिकित्सक से लगवानी चाहिए।

**नाभि नाल का पकना** : यह नवजात मेमनों में होने वाला साधारण रोग है परंतु कई बार इसके कारण मेमनों में ताण की बीमारी होने से मृत्यु दर बढ़ने की आशंका रहती है। नाभि नाल का जन्म के पश्चात् सही तरीके से उपचारित नहीं करने पर इसमें मिट्टी के साथ–साथ जीवाणुओं का संक्रमण हो जाता है तथा इसमें सूजन व मवाद हो जाती है। इससे मेमनों को दर्द के कारण बेचौनी होती है तथा वह ठीक से पर्याप्त मात्रा में माँ का दूध भी नहीं पी पाता है। संक्रमण से बुखार आता है तथा धाव पर मक्खियों द्वारा अण्डे देने से उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। इस रोग से बचाव हेतु भेड़ पालकों का चाहिए कि जन्म के पश्चात् नाभि नाल को 2–3 इंच की दूरी पर धागे से बाँध कर काट देवें तथा कटे हुए भाग पर टिंचर आयोडीन लगा देवें।

**घाव / जख्म** : रेवड़ में भेड़ों की ऊन कतरते वक्त, चरागाह में चरते वक्त, उबड–खाबड, पथरीले रास्तों पर चलाने पर, किसी प्रकार की चोट लगने पर त्वचा या शरीर के किसी भी भाग की सामान्य निरन्तरता में टूटन आने को घाव के नाम से जाना जाता है। शरीर पर घाव होना कोई एक बीमारी नहीं है परन्तु थोड़ी सी लापरवाही से घाव द्वारा पशु को अनेक बीमारियाँ हो सकती है। कोई भी घाव शरीर के लिए कितना नुकसानदायक है यह इस बात पर निर्भर करता है कि घाव किस कारण से हुआ, कितना गहरा हुआ तथा कौन सा अंग प्रभावित हुआ। घाव के कारण पशु की उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। सामान्यतया प्रारम्भिक लक्षणों में घाव से खून का बहना, दर्द होना, सूजन आना प्रमुख है। लम्बे समय तक रहने वाले घावों में गेन्ग्रीन (गलन) होने से बदबू आने लगती है तथा त्वचा गलने लगती है। मक्खियों द्वारा अण्डे देने पर उसमें कीड़े भी पड़ जाते हैं। घाव की गंभीरता व प्रकार के आधार पर पशु बुखार आना, चारा–पानी के प्रति रूचि कम होना, चलने–फिरने में परेशानी होना दिखाई देता है।

उपचार हेतु घाव से निकलते हुए खून के बहाव को तत्काल टिंचर बेजांईन को गौज (पट्टी) द्वारा घाव को पेक कर देना चाहिए। घाव को लाल दवा के पानी से अच्छी तरह से साफ करें, घाव के आस–पास के बाल काटकर बिटाडीन जैसी जीवाणुनाशक दवा या मल्हम लगावें। पुराने घाव से गले हुए ऊतकों को निकालकर नारमल सेलाईन या हाइट्रोजन पराक्साईड के घोल से घाव को साफ करें तथा एंटिसेप्टिक मल्हम जैसे लोरेक्सन, हिमेक्स, प्युरासिन, इन्टाडीन आदि या जीवाणुनाशक स्प्रे का प्रयोग करें। इसके साथ–साथ पशु चिकित्सक की सलाहनुसार एंटीबोयाटिक दवा जैसे पेनिसिलन आदि देने से घाव में मवाद की संभावना कम हो जाती है। घाव में मवाद होने पर सर्वप्रथम 2–3 दिन तक उसका मेग्नीशियम सल्फेट के पाउडर से उपचार करें। घाव के कीड़े पड़ने पर तारपीन को तेल द्वारा कीड़ों को बाहर निकाले एवं इससे बाद मलहम का प्रयोग करें।

# ऊन उत्पादन की प्रक्रियाः ऊन कल्पन एवं श्रेणीकरण की सामान्य जानकारियाँ

**अजय कुमार एवं दिनेश बाबू शाक्यवार**

देश के पशुपालन व्यवसाय में दुधारू पशुओ के उपरान्त भेड़ पालन एक मुख्य व्यवसाय है एवं राजस्थान में भेड़पालन एक प्रमुख स्थान रखता है। देश की कुल उपलब्ध भेड़ों की संख्या जो कि अनुमानतः 5.0 करोड़ का 10 प्रतिशत केवल राजस्थान में पाई जाती है जिनसे गलीचा निर्माण एवं उच्च गुणवत्ता वाली 1.2 से 1.3 करोड़ किलोग्राम कच्ची ऊन प्राप्त होती है। राजस्थान में भेड़ से ऊन कल्पन का कार्य प्रायः वर्ष में तीन बार, आषाढ़, कार्तिक एवं चैत्र जो कि अंग्रेजी कैलेण्डर के जुलाई, अक्टूबर–नवम्बर एवं मार्च माह में काटी जाती है। आषाढ़ में काटी गई ऊन कम सफेद से हल्दी पीली, कार्तिक में काटी गई ऊन पीली व चैत्र माह में काटी गई ऊन सफेद एवं चमकदार होती है। देश के अन्य भागों में ऊन मुख्यतः दो बार कल्पित की जाती है। ऊन कल्पन का समय वर्ष के माघ व आश्वीन जो कि फरवरी–मार्च एवं अगस्त–सितम्बर माह में की जाती है।

### साफ ऊन उत्पादन हेतू भेड़ की धुलाई (पीठ स्नान)

भेड़ से ऊन उत्पादन/उतारने की प्रक्रिया से पहले उसे पीठ स्नान अवश्य करवाना चाहिए अन्यथा उत्पादित ऊन की मण्डी में कीमत लगभग 35 प्रतिशत तक कम प्राप्त होती है। भेड़ के पीठ स्नान की प्रक्रिया ऊन कल्पन/कतरन के दो दिन पूर्व करना चाहिए, व मौसम का ध्यान रखते हुये यदि साफ व खीली हुई धूप न होने की स्थिति में पीठ स्नान व ऊन कटाई की प्रक्रिया को टाल देना चाहिए।

भेड़ को पीठ स्नान करते समय बरती जाने वाली सावधानियाँ निम्न प्रकार से है।

1. भेड़ को चलते हुए पानी जैसे नहर, टूबवैल या तालाब, टब इत्यादि में गर्दन तक डूबाकर हाथ से ऊन को रगड़ते हुए पीठ स्नान करवाना चाहिए।
2. पीठ स्नान के उपरान्त भेड़ की ऊन को दोनों बाजूओं से इस प्रकार ऊपर से नीचे तक नीचोडना चाहिए की ऊन से अधिकतम पानी निकल जाए।
3. भेड़ को तब साफ सुथरी घासयुक्त स्थान पर सुखने के लिए टहराना चाहिए।
4. भेड़ से ऊन कतरने का कार्य को पीठ स्नान से दो–तीन दिन बाद ऊन पूर्णतः सुखने के बाद ही शुरू करनी चाहिए।

### पीठ स्नान के लाभः–

1. इस प्रक्रिया के द्वारा हम न केवल धूल, मिट्टी व मिगंनी इत्यादि हठाने के कुछ हद तक सफल होते है, बल्कि भेड़ का पसीना भी ऊन की साफ करने में प्रयुक्त हो जाता है।
2. ऊन कतरन के समय कैंची पर बार–बार धार नही रखनी पडती है तथा एक भेड़ पर से ऊन उतारने की प्रक्रिया जल्दी पूर्ण होती है जिसका लाभ भेड पालक व ऊन कतरने बाले दोनो को समय की बचत के रूप में प्राप्त होता है।

3. किसान के पूरे रेवड़ की ऊन जल्दी उतर जाती है।
4. भेड़ ऊन उतराते वक्त कम समय जकड में रहती है व उसे कैंची लगने की सम्भावना कम होती है।
5. ऊन काटने वाला कम समय में अधिक भेडों की ऊन उतार कर प्रतिदिन अधिक आय कर पाता है।

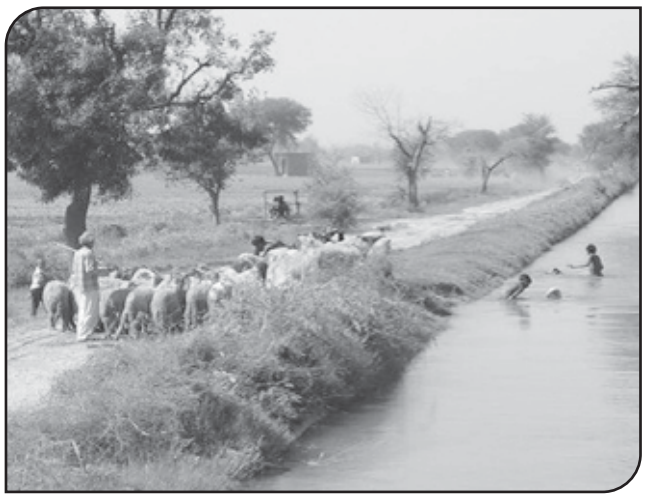

**चित्र 1 : नहर में भेड़ का पीठ स्नान**

**चित्र 2 : तालाब में भेड़ का पीठ स्नान**

केन्द्रीय ऊन विकास बोर्ड द्वारा वित्त पोषित परियोजना के अंर्तगत भा0 कृ0 अनु0 प0-केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर ने भेड़ के पीठ स्नान प्रक्रिया हेतू एक स्वचालित भेड़ धुलाई मॉडल को विकास किया। जिसमें धुलाई के समय विभिन्न दिशाओं से भेड पर साबुन युक्त पानी का बौछार की जाती है व उससे समस्त धूल, मिट्टी मिंगनी इत्यादि स्वतः अलग हो जाती है व भेड़ की ऊन से पानी निचुडने के लिए पक्के खुले स्थान पर छोड दिया जाता है। इस समस्त कार्य कलापों के दौरान भेड़ बगैर पकडे–जकडे, स्वछन्द स्नान करती है व उसे किसी भी प्रकार नुकसान नहीं होता है तथा भेड़ स्नान हेतू मानव श्रम की आवश्यकता भी नहीं रहती है। यह मॉडल इसलिए भी अधिक कारगर है कि इसमें प्रयुक्त होने वाले पानी को पुनः प्रंसकृत कर उपयोग में ले लिया जाता तथा धुलाई में प्रयुक्त होने वाले पानी की काफी बचत होती है।

**चित्र 3 : पीठ स्नान के लिए स्वचालित भेड़ धुलाई मॉडल**

### भेड़ों से ऊन कल्पन

भेड़ों से ऊन कल्पन का कार्य दो विधियों से किया जाता है। हाथ (कैंची) द्वारा ऊन कल्पन या मशीन द्वारा ऊन कल्पन, जिसमें मशीन कल्पन लाभकारी है। इसके लाभ निम्न प्रकार हैं:

1. ऊन काटने का कार्य आसानी से कम श्रम में संभव होता है।
2. दोहरे कट की संभावना कम होती है व एक समान, पूर्ण लम्बाई की गुणवत्ता वाली ऊन प्राप्त होती है।
3. इस विधि द्वारा ऊन काटने पर भेड़ की खाल के ऊपर कटाव और खरोंचे बहुत कम लगती है व अच्छी खाल प्राप्त होती ह, जिसका बाजार में अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

चित्र 4 : कैंची द्वारा ऊन कतरन

चित्र 5 : मशीन द्वारा ऊन कतरन

### ऊन काटते समय बरती जाने वाली सावधानियाँ

(अ) भेड़ को ऊन उतारने से दो दिन पहले नहलाना चाहिए (पीठ स्नान) जिससे धूल मिट्टी मिंगनी इत्यादि ऊन से कुछ हद तक अलग हो जाती है और ऊन काटते समय जल्दी–2 कैंची में धार नहीं रखनी पड़ती है। भेड़ के नहलाने के बाद पूरी तरह सूखने पर ही ऊन काटनी चाहिए। गीली ऊन काटने से भंडारण करने पर ऊन खराब होने का अंदेशा बना रहता है।

(ब) ऊन काटते समय हाथ से खाल को खींच कर नहीं बल्कि खाल को सहारा देकर (कडा रखकर) ऊन काटनी चाहिए ताकि त्वचा को कटने से बचाया जा सके। जननांगों, पेट के निचले भाग, थनों के पास की ऊन काटते वक्त विशेष ध्यान रखना चाहिए एवं कैंची लगने से बचाना चाहिए।

(स) भेड़ से ऊन काटने का कार्य स्वच्छ एवं सम्भव हो तो लकड़ी के फर्श पर करना चाहिए ताकि ऊन उतारते वक्त भेड़ को पकड़ कर रखने के दौरान व पलटने पर उसे चोट न लगे। सम्भव हो तो लकड़ी के फर्श पर तिरपाल बिछाकर भेड़ की ऊन की कटाई की जानी चाहिए ऐसा करने से छीजत कम होती है व भेड़ को चोट भी नहीं लगती है।

(द) ऊन काटते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि लम्बी कैंची से लम्बा स्ट्रेप लेकर कम से कम चालों में ऊन काटी जाए। असमान रूप से कटने या दो बार कटने (डबल कट) से छीजत ज्यादा होती है व ऊन के मूल्य का ह्रास भी होता है।

(य) भेड़ से ऊन काटने के पश्चात लाणी में प्राप्त ऊन से जननांगों, पैरों इत्यादि की गंदी व काली भूरी ऊन को अलग कर देना चाहिए क्योंकि यह बाकी ऊन की गुणवत्ता को प्रभावित करती है व बाजार में बेचते समय ऊन के दाम को घटाती है।

(र) ऊन काटने के उपरान्त कुछ घंटे भेड़ को अनुकूलन विश्राम हेतु अवश्य देवें। यकायक भेड़ को धूप या ठंड में चरने के लिए न छोड़ें। ऊन काटने के आठ–दस दिनों के भीतर बाहरी परिजीवियों से भेड़ को बचाने के लिए उचित दवा के घोल का छिड़काव करें।

**कल्पित ऊन का श्रेणीकरण**

**ऊन छंटाई** – भेड़ से कल्पित ऊन को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करने से पूर्व ऊन की छंटाई करना निम्नलिखित कारणों से अत्यन्त आवश्यक है:

1. ऊन छंटाई की प्रक्रिया में भेड़ से प्राप्त लाणी की फर्श पर फैलाकर उसके शरीर से कुछ भागों में मुख्यतः मुँह, गर्दन, टाँगों इत्यादि की गहरे भूरे, काले रंग की ऊन को सर्वप्रथम प्राथमिकता से सफेद ऊन से अलग कर लेनी चाहिए क्योंकि इस तरह की ऊन रंगीन धागा बनाने हेतु एक दोष है जिससे बने हुए धागों को उपयोग हेतु रंगने पर समान शेड़ प्राप्त नहीं होता है।
2. लाणी में से अधिक काँटें वाली ऊन के गुच्छों को भी अलग कर देना चाहिए अन्यथा ये काँटे धागा बनाने वाली मशीन मुख्यतः कार्डिंग के लिए नुकसानदायक होते हैं।
3. भेड़ से कल्पित लाणी से पेट, पैर एवं पूँछ की सफेद ऊन को भी अलग कर लेना चाहिए क्योंकि भेड़ के इन भागों की ऊन गुणवत्ता अन्य भागों की ऊन से कमतर हाती है। उपरोक्त अंगों से प्राप्त ऊन मोटी व कम लम्बाई की होती है।
4. हाथ से ऊन कल्पन के समय दोहरे कट्स से बचना चाहिए एवं छंटाई के समय इन दोहरे कट्स की ऊन को भी अलग कर लेना चाहिए। क्योंकि इस तरह की कम लम्बाई की ऊन के कारण उच्च गुणवत्ता का धागा प्राप्त करना सम्भव नहीं हो पाता है।

**चित्र 6 : महिलाओं द्वारा ऊन छंटाई**

भेड़ पालक कल्पित ऊन के उचित मूल्य प्राप्ति हेतु ऊन कल्पन के साथ–साथ छंटाई करना एक जरूरी कार्य है। अन्यथा इस प्रकार की रंगीन, मोटी, कम लम्बाई, काँटे वाली व दोहरे कट्स की ऊन, रेवड़ की सम्पूर्ण ऊन की कीमत को घटा देती है और पूरी मेहनत के उपरान्त भी भेड़ पालक को कल्पित ऊन की उचित कीमत प्राप्त नहीं हो पाती है।

**कल्पित ऊन के श्रेणीकरण हेतु ऊन के गुणवत्ता मानक**

1. रेशों की मोटाई एवं मैडूलेशन
2. रेशों की लम्बाई
3. ऊन का रंग एव चंमक
4. ऊन में काँटें की मात्रा

उपरोक्त उल्लेखित छंटाई प्रक्रिया एवं ऊन की गुणवत्ता मानकों के अनुसार भारतीय परिप्रेक्ष में कालीन/गलीचा निर्माण व अन्य उपयोग हेतु कल्पित ऊन को सामान्यतः चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है जो कि निम्न प्रकार हैः

**1. उत्तम श्रेणी** : कम मोटाई (डायामीटर 32 माईक्रोन से कम), औसत मेडूलेशन, मुख्यतः हैट्रो टाइप मेडूलेशन (25 प्रतिशत से कम), 4 इन्च से अधिक लम्बी, सफेद, चमकदार एवं औसत 2 प्रतिशत से कम काँटे वाली ऊन इस श्रेणी में आती है। इस प्रकार की ऊन से 48 या अधिक वस्टेड काउन्ट का धागा तैयार करना सम्भव होता है व इस ऊन से बने धागे को हल्के एवं एक समान रंग में रगा जा सकता है। इस ऊन से धागों से बने गलीचे/कालीन, वस्त्रोत्पाद व अन्य उत्पाद मनचाहे रंगों में चमकदार होते हैं जिनकी बाजार में ऊँची कीमत प्राप्त होती है। इसलिए इस प्रकार की ऊन के मण्डी में विपणन के समय भी अधिकतम कीमत मिलती है।

**2. अच्छी श्रेणीः** औसत मोटाई (डायामीटर 32 माईक्रोन से कम), 25–50 प्रतिशत मेडूलेशन (हैट्रो व हेयरी टाइप), 3–4 इन्च लम्बी, सफेद पर कम चमकदार एवं हल्की पीली परन्तु चमकदार तथा 2–3 प्रतिशत काँटे वाली ऊन इस श्रेणी में वर्गीकृत की जाती है। इस श्रेणी की ऊन से 40–48 वस्टेड काउन्ट का धागा बनाया जा सकता है। इस प्रकार की ऊन से बने कालीन एवं अन्य उत्पादन मन चाहे रगों व चमकदार होते है। इस श्रेणी से बने उत्पादों की भी बाजार में अच्छी कीमत प्राप्त होती है व मण्डी में क्रय–विक्रय के दौरान किसानों को अच्छे दाम मिलते हैं।

**3. मध्यम श्रेणी** : इस श्रेणी में वर्गीकृत होने वाली ऊन की औसत मोटाई 30–40 माईक्रोन, औसत मेडूलेशन 50–75 प्रतिशत तक जिसमें मुख्यतः हेयरी टाइप मेडूलेटेड रेशे होते हैं लम्बाई डेढ़ से दो इन्च होती है। यह ऊन पीली, कम चमकदार होती है एवं इसमें काँटे की मात्रा 3–6 प्रतिशत तक होती है। इस प्रकार ऊन विदेशों से आयातित महीन ऊन के वेस्ट से मिलाकर 36–40 वस्टेड काउन्ट का ऊनी धागा बनाना सम्भव होता है जिससे औसत स्तर के कालीन, फैल्ट व दरियाँ इत्यादि बनाई जाती है। इस प्रकार की ऊन के उत्पाद बाजार में औसत दर पर बिकते हैं एवं किसानों की इस ऊन का मण्डी में विपणन के समय समान्य कीमत ही प्राप्त हो पाती है।

**4. कमतर श्रेणीः** इस श्रेणी में वर्गीकृत ऊन की औसत मेाटाई (43 माईक्रोन से अधिक), औसत मैडूलेशन 75 प्रतिशत से अधिक (मुख्यतः हेयरी व कैम्प टाइप मेडूलेशन), लम्बाई डेढ़ से दो इन्च, रंग पीला, भूरा व काला होता है। ऊन में काँटे की मात्रा 6 प्रतिशत से अधिक होती है। इस प्रकार की ऊन एकल उपयोग में नहीं लाई जाती है व अन्य मध्यम श्रेणी की ऊन के साथ इसे मिलाकर, दरियाँ, कैदियों के कम्बल व निम्न स्तर की फैल्ट बनाई जाती है। इस ऊन से बने उपरोक्त उत्पाद सस्ती दरों पर बाजार में उपलब्ध होते हैं एवं किसानों को इस तरह की ऊन की कीमत मण्डी में विपण के दौरान काफी कम प्राप्त होती है यहाँ तक की ऊन कल्पन, छंटाई इत्यादि का खर्च भी पूरा नहीं हो पाता है।

# भेड़ के मांस एवं दूध का मूल्य संवर्धन

**योगेश पी.गाडेकर, गौरी जैरथ एवं ए.के. शिन्दे**

प्राचीन काल से ही मांस हमारे आहार का अभिन्न अंग रहा है। मांस हमारे मानवीय भोजन में प्रोटीन का उत्तम स्त्रोत है, जो शरीर के विकास के लिए अति आवश्यक है। ना केवल पोषण के महत्व से ये उपभोक्ताओं की एक मुख्य पसंद है बल्कि बाजार में उपलब्ध तरह–तरह के 'रेडी टू ईट' मांस उत्पादों की वजह से यह व्यस्त जीवन में पूरी तरह शामिल हो गया है। मांस के प्रसंस्करण से विभिन्न प्रकार के मूल्य सवंर्धित उत्पाद बनाए जा सकते है (सारणी 1)। मूल्य संवर्धन ना केवल उपभोक्ताओं के स्वाद कलिकाओं को सन्तुष्ट करने में सहयोग देता है, बल्कि अधिक मुनाफा भी देता है। आजकल उपभोक्ताओं की रूची स्वस्थ एवं अधिक गुणवत्ता वाले पदार्थों में अधिक है। बड़े–बड़े महानगरों में यह उत्पाद उपलब्ध है। मांस गुणवत्ता की वृद्धि में प्रसंस्करण का बहुत अधिक योगदान है। परन्तु हमारे देश में कुल मांस उत्पाद में से केवल 1–2 प्रतिशत मांस का ही प्रसंस्करण होता है जो विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। मांस प्रसंस्करण को मांस उद्योग के जगत में आशीर्वाद से कम नहीं आँक सकते, क्योंकि इसके अनेक लाभ है, जैसे कि–

- अधिक आयु वाले जानवरों के मांस को या कम गुणवत्ता वाले मांस को अधिक स्वादिष्ट एवं लाभकारी बना सकते है।
- उत्पादों के निधानी आयु में वृद्धि होती है।
- माँस प्रसंस्करण से ना केवल स्वादिष्ट उत्पाद बनाए जा सकते है बल्कि पौष्टिक एवं सस्ते तरह–तरह के उत्पाद भी बनाए जा सकते है।
- उपभोक्ताओं की रूची के अनुसार कम वसा, कम नमक, अधिक रेशामय, ओमेगा-3 फेटी एसिड युक्त उत्पाद उपलब्ध करवा सकते है।
- इसके अतिरिक्त रोजगार में भी वृद्धि होती है।

**सारणी– 1 विभिन्न प्रसंस्करित उत्पाद**

| क्र.स. | प्रसंस्करित उत्पाद | उदाहरण |
|---|---|---|
| 1. | भारतीय परम्परागत उत्पाद | मीट करी, सीक कबाब, कोफ्ता, समोसा, तंदूरी, कोरमा, |
| 2. | लुगदी आधारित उत्पाद | नगेट्स, पैटीज, सासेज, लोफ, मीट रोल्स |
| 3. | आलेपित मांस उत्पाद | आलेपित मीट बाइट्स, आलेपित नगेट्स एवं पैटीज |
| 4. | क्युअर्ड एवं धूम्रित उत्पाद | हेम, बेकन, सासेज |
| 5. | पुर्नरचित मांस उत्पाद | रोल स्टीक्स, चॉप्स |
| 6. | स्वतः स्थायी मांस उत्पाद | आचार, फरमेन्टेड उत्पाद, मध्यवर्ती नमी वाले उत्पाद |
| 7. | स्वास्थ्यवर्धक मांस एवं मांस उत्पाद (डिजाईनर मांस उत्पाद) | कम वसा, कम नमक ज्यादा रेशे, ओमेगा-3 युक्त पदार्थ |

**भारतीय परम्परागत उत्पाद**–मांसकरी भारत का सबसे ज्यादा प्रचलित मांस उत्पाद है। करी बनाने हेतु मांस के टुकडों को मेरीनेट कर उन्हें तेल में तल लेते है। प्याज और लसन की लुगदी के साथ पकाते है इसके उपरान्त स्वाद के अनुसार मसालों का उपयोग करते है।

**सीक कबाब** –सीक कबाब बनाने हेतु मांस को पीसकर नमक मसाले अण्डा आदि मिलाकर लुगदी तैयार करते है। लुगदी को लौहे की सीकों में लगाकर आग पर पकाते है।

**मांस कोफ्ता**– मांस कोफ्ता एक प्रचलित मांस उत्पाद है मांस की लुगदी को हाथ से लगभग बीस ग्राम के गोले बनाकर इसको तल लेते है। आवश्यकतानुसार इन्हें प्याज,लहसून, टमाटर आदि से बनी करी में डालकर खाया जा सकता है।

**मांस समोसा**– मांस को पीसकर उबले आलू की लुगदी के साथ फ्राई करते है और इस मिश्रण को आटे से बने समोसा कवर के अन्दर भरकर कुरकुरे होने तक तलते है।

**लुगदी आधारित मांस उत्पाद** – लुगदी आधारित मांस उत्पाद बनाने हेतु हड्डीरहित मांस को मशीन से पीसा जाता है। प्राप्त कीमा, नमक, मसालें और अन्य रसायन आदि का मिश्रण बाउल चॉपर मशीन में किया जाता है। इसके बाद प्याज एवं लहसून की लुगदी बाइन्डर्स तेल आदि मिलाकर इमल्शन बनाया जाता है इस तरह से तैयार इमल्शन से सुविधानुसार विभिन्न प्रकार के मूल्यवर्धित उत्पाद जैसे कि पैटीज, नगेट्स, सासेजेस आदि बनाये जा सकते है।

**आलेपित मांस उत्पाद** – पके हुए मांस के टुकड़ों को बेसन, नमक एवं अण्डा के मिश्रण में डुबाकर तेल में तला जाता है। यह उत्पाद दिखने में आकर्षक एवं कुरकुरे होते है।

**पुर्नरचित मांस उत्पाद**– कम गुणवत्ता वाले मांस के टुकडों का सदुपयोग करने हेतु पुर्नरचित उत्पाद बनाये जाते है। मांस के छोटे टुकडों को रसायनों एवं मशीन द्वारा एक साथ जोडकर बड़ा टुकडा बनाया जाता है और इच्छित आकार में काटा जाता है।

**क्युअर्ड एवं धूम्रित उत्पाद**– मांस से प्राप्त प्राथमिक कट को नमक नाइट्राइट चीनी, फॉस्फेट के मिश्रण में डुबाकर रखते है और चंक्स को ओवन में धुऐं के साथ पकाया जाता है। इस तरह के उत्पादों के रंग एवं महक को काफी पसंद किया जाता है।

**स्वतः स्थायी मांस उत्पाद**– गर्म जलवायु के देशों में ताजे मांस के संरक्षण के लिए निर्बाध बिजली की आवश्यकता होती है। परन्तु बिजली के दाम महंगे होने से मांस पदार्थों के दाम भी बढ़ जाते है। इसलिए ऐसे मांस पदार्थों का विकास किया गया जो स्वयं स्थायी हो और जिनके संरक्षण के लिए किसी भी प्रकार की मशीनरी का प्रयोग ना हो। स्वयं स्थायी उत्पादों में डिब्बा बन्द मांस उत्पाद, मांस का अचार, फरमेन्टेड मांस पदार्थ इत्यादि संकलित है।

**स्वास्थ्यवर्धक मांस एवं मांस उत्पाद**

मांस एवं मांस के उत्पादों को स्वास्थ्यवर्धक बनाने के लिये 3 प्रकार कि युक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है जिनका मुख्य लक्ष्य मांस के प्राकृतिक रूप से उपस्थित हानिकारक पदार्थों को कम करना या समाप्त करना या फिर उन पदार्थों से मांस को युक्त करना जो कि बहुत ही पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक हो।

(1) **कारकस / लोथ मे परिवर्तन**– शोध के अनुसार सही नस्ल का चुनाव एवं उत्तम अनुवांशिकी लोथ के पोषकमान में परिवर्तन करने में प्रमुख भूमिका निभाती है। सही अनुवंशिकी एवं नस्ल के चुनाव से लोथ में ना केवल वसा कम किया जा सकता है बल्कि असंतृप्त फैटी अम्ल की मात्रा को भी बढ़ाया जा सकता है। अध्ययन में यह पाया गया है कि अगर हम विटामिन 'इ', खनिज तत्व आदि को उपयुक्त मात्रा में जानवरों को खिलाये तो मांस की निधानी आयु को बढाया जा सकता है।

(2) **कच्चे मांस का रूपांतरण**– कच्चे मांस के पोषकमान पर ही उत्पाद का पोषणमान निर्भर करता है। अगर कच्चा मांस उच्च गुणवत्तायुक्त होगा तो ही मांस से बनाये गये उत्पाद उत्तम गुणवत्ता के हो सकते है। उदाहरण के तौर पर अगर मांस से अतिरिक्त चर्बी को अलग कर दिया जाये तो निधारित रूप से मांस उत्पाद भी कम वसायुक्त होगा।

(3) **मांस उत्पादों का पुननिर्माण** – मांस उत्पादों के पुननिर्माण से स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद बनाए जा सकते है। मांस उत्पादों का पोषण मान उनके निर्माण के दौरान पुननिर्मित किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर नमक, संतृप्त फैट्टी अम्ल, सोडियम नाइट्राइट जैसे आमतौर पर मिलने वाले पदार्थों की मात्रा, उत्पादों में कम करने से या फिर असंतृप्त फेट्टी अम्ल, रेशा, ऑक्सीकरण रोधी पदार्थों की मात्रा को बढ़ाने से पोषण मान को नयी रचना दे सकते है। नए रचनात्मक पदार्थ पूरी तरह से लाभकारी एवं उपभोक्ताओं के हित में होने चाहिए।

**मांस उत्पाद के पुननिर्माण के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है** –

- **वसा कम करना** – वसा कम करने में महत्वपूर्ण योगदान कम वसा वाले मांस के चयन का है। दूसरे महत्वपूर्ण कारकों में, अमांसीय खाद्य पदार्थों एवं प्रयोग की गई प्रक्रिया शामिल है। कम वसा पदार्थों के पेटीज, बोलोगना नगेट्स इत्यादि उदाहरण है। वसा रिप्लेसर इसमें प्रमुख भूमिका निभाते है।

- **फेट्टी अम्लों में बदलाव** – यह बदलाव पशु–जन्य चर्बी को गुणकारी पदार्थों में बदलकर आसानी से किया जा सकता है। गुणकारी पदार्थों में संतृप्त अम्ल जैसे कि ओलिक अम्ल, मछली का तेल, वेजीटेबल तेल ( सोयाबीन, जैतून, कपास के बीज का तेल) शामिल है।

- **नमक की मात्रा कम करना**– ज्यादा नमक रक्त चाप के लिए हानिकारक है। सोडियम के स्थान पर पोटाशियम या फिर मेगनीशियम नमक संतोषजनक परिणाम दे सकते है। परन्तु कम नमक से उत्पाद के स्वाद पर काफी बुरा प्रभाव पड़ता है। परन्तु फॉस्फेट को अगर मांस के उत्पादों में डालें तो यह स्वाद पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव को खत्म कर देता है। कम नमक वाले मास उत्पादों की मांग उपभोक्ताओं में काफी बढ़ गयी है।

- **अधिक रेशामय मांस उत्पाद** – रेशायुक्त पदार्थ जैसे कि जौ, शकरकंदी, सोया, सेब इत्यादि को मांस के उत्पादों में डालकर शोध किया गया है जिससे निष्कर्ष निकाला गया कि इन पदार्थों से मांस में रेशे की मात्रा बढ़ जाती है जो पाचन तंत्र के लिए लाभदायक है।

अतः इस तरह विभिन्न प्रसंस्करण तरीकों से कई तरह के स्वादिष्ट मांस उत्पाद बनाए जा सकते है जो न केवल स्वास्थ्यवर्धक है बल्कि किसान का रोजगार और आय भी बढ़ाते है।

## दूध का मूल्य संवर्धन

कई दशकों से भेड़ पालन मांस एवं ऊन के उत्पाद तक सीमित रहा है। भेड़ पालन मुख्य रूप से दूध उत्पादन के लिए मध्य पूर्व एवं आभ्यंतरिक देशों तक ही सीमित है। लगभग दो तिहाई दूध इन्ही देशों से आता है। पूरे विश्व के कुल दूध उत्पादन में भेड़ का 1.4 प्रतिशत सहयोग है। लगभग 0.5 किलो से कम प्रति भेड़ दूध उत्पादन होता है जो मेमनो की आवश्यकता को पूर्ण करने योग्य होता है। भारत में भेड़ का दूध उत्पादन में सहयोग होने का कोई लक्ष्य दर्ज नहीं है। परन्तु अब भारत में भी भेड़ दूध उत्पादन को महत्व दिया जा रहा है क्योंकि भेड़ का दूध मूल्य वर्धित उत्पाद ''चीज'' बनाने के लिए अति योग्य है। भेड़ के दूध से विभिन्न प्रकार के उत्कृष्ट स्तर के उत्पाद जैसे की चीज, दही एवं पनीर बनाए जा सकते है। भेड़ दूध में प्रोटीन वसा एवं कैल्शियम ज्यादा मात्रा में पाये जाते है, जो कि 'चीज' उत्पादन के लिए अति महत्वपूर्ण अवयव होते है।

**भेड़ दूध का पोषण मान (ग्राम/100 ग्राम)**

| क्र.सं. | अवयव | प्रतिशत |
|---|---|---|
| 1. | नमी | 82.9 |
| 2. | वसा | 5.9 |
| 3. | प्रोटीन | 5.5 |
| 4. | दुग्ध शर्करा | 4.8 |
| 5. | राख | 0.9 |

हालांकि भेड़ दूध के पोषण मान पूरे वर्ष एक समान नहीं रहते है एवं विभिन्न कारकों पर निर्भर करते है। ये कारक है – दूध चरण (लेकटेशन स्टेज), पर्यावरण तापमान, गर्भाधारण की संख्या, दूध देने की क्षमता, जानवर की उम्र, दिया जाने वाला चारा, अनुवांशिकी (नस्ल) थनों का स्वास्थ्य। मौसम का बदलाव फैट्टी अम्ल की रचना पर काफी हद तक प्रभाव डालता है क्योंकि मौसम के बदलाव से सीधा फर्क चारे पर पड़ता है। वसा एवं बाकी अवयवों की मात्रा अनुवांशिकी, पर्यावरणीय कारक (मौसम) एवं शारीरिक क्रिया पर निर्भर करती है। भेड़ के दूध में भारी मात्रा में वसा ग्लोब्यूल्स पाए जाते है। हालांकि इनका आकार गाय के दूध से छोटा होता है। इसके अतिरिक्त गाय के दूध के मुकाबले में आसानी से पच जाता है। प्रोटीन भाग का भेड़ की गुणवत्ता एवं प्रसंस्करण में बहुत बड़ी भूमिका है। भेड़ के दूध में कैसीन प्रोटीन बाकी जाति के जानवरों के दूध के मुकाबले में अधिक पाया जाता है। इसके साथ–साथ में कैल्शियम भी सबसे अधिक पाया जाता है, जो ज्यादा तापमान में भी स्थिर रहने की क्षमता रखता है। कैल्शियम अधिक होने की वजह से चीज बनाते समय कैल्शियम क्लोराइड डालने की जरूरत नहीं पड़ती। इसके अलावा रेनेट भी भेड़ दूध में 'चीज' बनाते समय कम मात्रा में चाहिए होती है।

### मूल्यवर्धित भेड़ दूध उत्पाद

ऊपर लिखी भेड़ दूध की विशेषताएं इसको मूल्यवर्धित उत्पादों के सृजन में अतियोग्य बनाती है। ज्यादा प्रोटीन एवं वसा, चीज एवं आइसक्रीम बनाने हेतु उपयुक्त बनाते है। ज्यादा मात्रा में प्रोटीन होने की वजह से फरमेन्टेड दूध भी आसानी से बनाया जा सकता है वो भी बाकी दूध के मुकाबले में जल्दी एवं बिना निर्माण प्रक्रिया पर सीधा प्रभाव डाले।

**सेरा दा एसटरेला चीज** – यह ताजे दूध एवं कार्डो रैनेट से बनता है। इसके लिए दूध को 27–29 डिग्री/तापमान तक गर्म करने के बाद कार्डो रैनेट डालते है जिससे दही तैयार हो जाता है। फिर दही को छान लेते है एवं पानी निकालने के लिए दबाव डालते है। तब दही को हाथ से धीरे–धीरे गुंदते है। तत्पश्चात् 'चीज' को नमक के साथ मसला जाता है जिसके बाद मलमल के कपड़े में गांठ लगाकर बांध दिया जाता है और नमी वाले वाले स्थान पर रख देते है ताकि राइपनिंग अच्छे से हो सके। आमतौर पर 35–40 दिन तक राइपनिंग करते है और इस हेतु सलैंडर आकार में (15–20 से.मी.) व्यास और 4–6 से. मी. ऊँचाई में होता है।

### चीज के लाभ

- भेड़ के दूध से चीज बनाते समय लेक्टोस की काफी मात्रा मट्ठ में निकल जाती है यह लेक्टोस एलर्जी वाले उपभोक्ताओं के लिए काफी हितकारी है।
- भेड़ दूध के वसा में चूंकि ग्लोब्यूल्स छोटे होते है तो इससे बना हुआ चीज आसानी से पच जाता है।

- चूंकि छोटी और मध्यम श्रृंखला वाले फैटी अम्ल भेड़ के दूध में होते है, तो चीज लेक्टोस को आसानी से अवशोषित कर लेता है।
- भेड़ दूध से बने चीज में लगभग 3 गुणा ज्यादा मट्ठ प्रोटीन पाए जाते है, जो इसे एक उत्तम प्रोटीन स्त्रोत बनाता है।
- भेड़ के दूध से बना चीज कैल्शियम एवं जिंक का भी बहुत महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

**आइसक्रीम**

ज्यादा वसा एवं छोटे वसे के ग्लोब्यूल्स भेड़ के दूध से आइसक्रीम बनाने के लिए उपयुक्त रहते है। ज्यादा वसा होने की वजह से अतिरिक्त मक्खन, क्रीम या अंडे डालने की जरूरत नहीं पड़ती। भेड़ दूध से बनी आइसक्रीम का बहुत ही क्रीमी एवं समतल बनावट होती है साथ ही 7 प्रतिशत ही वसा मिलता है जो उपभोक्ताओं में गाय के दूध से बनी आइसक्रीम (12 प्रतिशत) से ज्यादा पसंदीदा बनाती है।

**पनीर**

पनीर एक परम्परागत दुग्ध उत्पाद है। पनीर उपभोक्ताओं द्वारा व्यापक रूप से स्वीकार्य है। पनीर बनाने हेतु दूध को छानकर 80–85$^{\circ}$C तक गर्म किया जाता है। इसके पश्चात् सिट्रिक/एसिटिक अम्ल का घोल बनाकर दूध को फाड़ते है। मलमल के कपड़े से छानकर 'व्हे' को अलग किया जाता है और स्कंदक को साँचे में दबाकर इच्छित आकार दिया जाता है। फिर प्राप्त पनीर को ठंडा कर प्रशीतन तापमान में रखा जाता है।

**मोजरेल्ला चीज**

मोजरेल्ला चीज एक दक्षिणी इटालियन डेयरी उत्पाद है। यह मुख्यतः भैंस के दूध से बनाया जाता है। ताजा मोजरेल्ला चीज आमतौर पर सफेद होती है लेकिन पशु के आहार के अनुसार हल्का पीला भी हो सकती है। मोजरेल्ला चीज का उपयोग पीज्जा और कई पास्ता व्यंजनों में किया जाता है। मोजरेल्ला चीज बनाने हेतु भैंस के दूध के साथ ही अन्य जानवरों से प्राप्त दूध जैसे कि गाय, भेड़, बकरी आदि इस्तेमाल किया जा सकता है। भेड़ के दूध का उपयोग कर प्रत्यक्ष अम्ल विधि से मोजरेल्ला चीज बनाया जा सकता है। भेड़ के दूध से बने मोजरेल्ला चीज को मोजरेला पेकोरला भी कहा जाता है।

**कुल्फी**

कुल्फी एक भारतीय दूग्ध उत्पाद है। कुल्फी की रचना आइसक्रीम के समान है। कुल्फी को उपभोक्ताओं द्वारा व्यापक रूप से स्वीकारा गया है। कुल्फी बनाने हेतु दूध को गाढ़ा किया जाता है और पसंदनुसार चीनी एवं सुगंध मिलाकर मिश्रण को साँचों में भरकर जमाया जाता है। चीनी की जगह कई स्वास्थ्यवर्धक पदार्थों का उपयोग कर कम मीठी कुल्फी बनाई जाती है। भेड़ के दूध में ज्यादा वसा एवं कुल ठोस पदार्थ होने से भेड़ के दूध से बनी कुल्फी अत्यन्त स्वादिष्ट होती है।

**सुगंधी दूध**

सुगंधी दूध बनाने हेतु दूध, चीनी, कृत्रिम प्राकृतिक स्वाद इस्तेमाल किया जाता है। दूध को गर्म कर चीनी, स्वाद एवं रंग मिलाये जाते है और दूध को पैकिंग कर शीत भण्डारण में रखा जाता है।

# मांस हेतू खरगोश की नस्लें एवं प्रजनन

देवेन्द्र कुमार एवं रणधीर सिंह भट्ट

हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है और पशु पालन कृषि का एक अभिन्न अंग है। भूमिहीन, गरीब ग्रामीणों की सबसे बडी पुँजी उनका पशुधन ही है। इसी धन के बल बूते पर वह अपने परिवार का पालन पोषण करता है। हमारे देश में गाय, भैस, भेड़, बकरी, सूअर व मुर्गी मुख्य पशुधन है जिनके बारे में अधिकतर ग्रामीणों को समय–समय पर जानकारी मिलती रहती है। लेकिन खरगोश पालन जानकारी के अभाव में अभी इतना प्रचलित नहीं हो पाया है। अधिकतर किसानों व बुद्धिजीवियों को यह लगता है कि खरगोश एक जंगली जानवर है अतः इसको पालना कानूनन अपराध है। परन्तु खरगोश पालन हेतू उपयोग मे लाने के लिए खरगोश की नस्लें पूर्णरूप से पालतू तथा विदेशी है जिनको हमारे संस्थान द्वारा भूतपूर्व सोवियत संघ तथा इंगलैण्ड़ से देश में आयात किया था। इस लेख में वर्णित खरगोश की नस्लों का जंगली खरगोशों से कोई संबध नहीं है।

खरगोशों को मुख्यतः मांस व ऊन उत्पादन के लिए पाला जाता है। अधिक प्रजनन क्षमता की वजह से खरगोश की मांस उत्पादन क्षमता अन्य पशुओं की तुलना में अधिक है। अधिकतर किसानों में यह धारणा है कि खरगोश केवल ठण्डे प्रदेशों में ही पाले जा सकते हैं लेकिन ऐसा नहीं है। माँस के लिए खरगोश (ब्रायलर) 35 से 40 डिग्री सै0 तापमान तथा शुष्क व नम जलवायु वाले क्षेत्रों में भी पाले जा सकते है। किन्तु ऊन वाले खरगोश (अंगोरा) केवल 15 से 20 डिग्री सै0 तापमान वाले क्षेत्रों में ही संतोषजनक तरीके से पाले जा सकते हैं।

खरगोश पालन आरम्भ करने के लिए शुद्ध नस्ल के खरगोश सरकारी फार्म से ही खरीदने चाहिए। खरगोशों का चयन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1 देखने मे चौकन्ने हो, कान साफ हो तथा लटके हुए न हो।

2 लंगडापन न हो।

3 त्वचा चमकदार व रोग रहित हो।

4 ऑखे चमकदार व स्राव रहित हो।

5 मल शुष्क गोलियों के रुप मे हो।

यदि कोई असाधरण लक्षण नजर आये तो चयन करने का निर्णय लेने से पूर्व खरगोश की किसी पशुचिकित्सक से जॉच करानी चाहिए।

**खरगोश की नस्लें**

मांस हेतू खरगोश की प्रमुख नस्लें निम्नलिखित हैं–

**न्यूजीलैंड व्हाईटः**– यह सफेद रंग का होता है तथा इसकी त्वचा गुलाबी रंग की होती है। आंखों का रंग लाल तथा आकार मध्यम होता है। यह एक बार में लगभग 6 या अधिक बच्चे देती है। इसका 3 महीनें की उम्र पर औसतन वजन 1.7 किग्रा. तथा व्यस्क वजन लगभग 3.5 से 4.0 किग्रा. होता है।

**सोवियत चिन्चिलाः**– इस जानवर के बाल का रंग काला सफेद मिश्रित तथा आंखों का रंग काला होता है। त्वचा भी काले रंग से मिलती जुलती होती है। इस नस्ल के जानवर भी एक बार में लगभग 6 या इससे अधिक बच्चे देते हैं। इसका 3 महीनें की उम्र पर औसतन वजन 1.7 किग्रा. तथा व्यस्क वजन 3.5 से 4.0 किग्रा. होता है।

**व्हाईट जाईंटः**— इसके बालों तथा त्वचा का रंग सफेद होता है। लेकिन इसकी आंखों का रंग लाल होता है। यह नस्ल न्यूजीलैंड व्हाईट से मिलती जुलती है लेकिन पीछे के पैर लम्बे तथा शरीर भारी होता है। इसका 3 महीनें की उम्र पर औसतन वजन 1.7 किग्रा. तथा व्यस्क वजन 3.5 से 4.0 किग्रा. होता है।

**ग्रे जाईंटः**— इस नस्ल के जानवरों के बाल का रंग गहरा भूरा तथा त्वचा का रंग काला होता है। आंखें भूरी होती है। इसका 3 महीनें की उम्र पर औसतन वजन 1.7 किग्रा. तथा व्यस्क वजन 3.5 से 4.0 किग्रा. होता है।

**काला भूराः**— इस नस्ल के खरगोश काले रंग के होते है। इनके बाल, आंखें तथा त्वचा का रंग काला होता है। इस नस्ल के जानवर भी एक बार में लगभग 6 या इससे अधिक बच्चे देते हैं। इसका 3 महीनें की उम्र पर औसतन वजन 1.7 किग्रा. तथा व्यस्क वजन 3.0 से 3.5 किग्रा. होता है।

**डचः**— इस नस्ल के खरगोश दो रंग के होते है। शरीर का आगे का आधा हिस्सा सफेद तथा पीछे का आधा हिस्सा भूरे रंग का होता है। इसका 3 महीनें की उम्र पर औसतन वजन 1.5 किग्रा. तथा व्यस्क वजन 2.5 से 3.0 किलोग्राम होता है।

न्यूजीलैंड व्हाईट

सोवियत चिन्चिला

व्हाईट जाईंट

ग्रे जाईंट

काला भूरा

डच

**खरगोश प्रजनन**

नर व मादा खरगोश लगभग 6 महिनों में जवान हो जाते है। और प्रजनन के लिए उपयोग में लाये जा सकते हैं। इसके बाद खरगोशों का कभी भी यहां तक की बच्चे देने के तुरन्त बाद भी, प्रजनन करवाया जा सकता है। लेकिन साल में एक मादा से लगभग 4 से 5 बार ही बच्चे लेने चाहिए, ताकि मादा पर किसी तरह का तनाव न पडे। प्रजनन के समय हमेशा मादा खरगोश को ही नर खरगोश के पिंजड़े में लाना चाहिए। खरगोश को हमेशा कन्धे की चमड़ी से पकडकर उठाना चाहिए तथा दूसरे हाथ से नीचे से सहारा देना चाहिए। खरगोश को कभी भी सिर्फ कान या पैर से पकडकर न उठायें। सफल प्रजनन के तुरन्त पश्चात नर खरगोश पीछे को या एक तरफ गिर जाता है तथा चिल्लाने जैसी आवाज निकालता है।

खरगोशों में गर्भकाल लगभग 30 दिन होता है, लेकिन मादाएं गर्भकाल समाप्त होने के 2 से 3 दिन पहले या बाद में भी बच्चे दे सकती है। इनमें गर्भ परीक्षण प्रजनन के 10 से 14 दिन पर किया जा सकता है। गर्भवती मादा को प्रजनन (मेटिंग) करवाने के 27–28 दिन बाद (यानि बच्चे देने से 2–3 दिन पहले) नेस्ट बाक्स युक्त पिंजड़े में रख देना चाहिए। नेस्ट बाक्स को रखने से पहले अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए, जिससे ये कीटाणु रहित हो जाये। इसमें नारियल का रेशा, लकडी का बुरादा, पुआल या भूसा आदि डालकर 2 से 3 ईंच मोटा बिस्तर बिछा देना चाहिए, जिससे बच्चे आराम से रह सके और इनको ठण्ड से भी बचाया जा सके।

एक बार में मादा खरगोश से औसतन 6 बच्चे प्राप्त होते हैं। नवजात बच्चों को पैदा होते ही माँ से अलग कर नेस्ट बाक्स में रख देना चाहिए अन्यथा कुछ मादाएं अपने बच्चों को खा भी जाती है। बच्चों को सुबह और शाम दिन में दो बार दूध पिलाया जाता है। खरगोशों के बच्चे बाल रहित पैदा होते हैं तथा उनकी आँखें बन्द होती हैं। लगभग 4 दिन बाद बाल निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं तथा आंखें 10–14 दिन बाद खुलती है। तीसरे सप्ताह में बच्चे दूध के अलावा दाना, घास व पानी लेना तथा पिंजड़े में नेस्ट बाक्स से निकल कर इधर उधर घुमना शुरू कर देते हैं। नवजात बच्चों को उनकी माँ के साथ लगभग 28 से 42 दिन तक रखा जाता है। इसके बाद बच्चों को माँ से अलग कर दिया जाता है तथा साथ ही नर व मादा बच्चों की पहचान कर अलग–अलग पिंजडों में अकेला रखा जाता है।

लिंग निर्धारण के लिए खरगोश को आराम से एक हाथ से पकड लें। दूसरे हाथ से पूंछ पकडकर हल्का सा दबाव जननांगो पर डाले। यदि जननांगो की जगह की श्लेष्मा एक गोल उभार के रुप मे दिखाई पड़े तो यह नर है और यदि यह लम्बे चीरे की तरह धंसी हुई दिखाई पड़े तो वह मादा है। खरगोशों की पहचान कान मे अल्यूमिनियम का छल्ला (टैग) लगाकर करते है। टैग पर खरगोश की प्रजाति तथा उसका नम्बर लिखा जाना चाहिए। आमतौर पर टैग नर के बांये कान तथा मादा के दांये कान मे लगाया जाता है।

प्रजनन के लिए खरगोशों का चयन उनके बच्चों कि संख्या, प्रजनन क्षमता, 84 दिन के वजन के आधार पर करना चाहिए। मांस उत्पादन बढ़ाने के लिए खरगोशों का प्रजनन रिकार्ड रखना महत्वपूर्ण होता है तथा इस रिकार्ड से ही अच्छे जानवरों का चयन करना चाहिए ताकि अंतः प्रजनन (इनब्रीडिंग) से बचाया जा सके। सगे जानवरों (भाई बहनों) का आपस में प्रजनन नहीं करवाना चाहिए। अन्यथा उनके बच्चों में अनचाहे गुण आने लगते हैं और उत्पादन क्षमता भी कम हो जाती है। इसलिए समय–समय पर नर को प्रजनन के लिए बदलते रहना चाहिए। उसी नस्ल के नर, किसी दूसरे फार्म से खरीद कर मादा को मिलाना चाहिए।

# खरगोशों का स्वास्थ प्रबंधन

**चन्द्र प्रकाश स्वर्णकार एवं सीताराम शर्मा**

खरगोश पालन को व्यवसाय के उद्देश्य से पालने पर यह आम नागरिकों विशेषरूप से जिनके पास जमीन नही है, बेरोजगार युवाओं के लिए आय का उत्तम स्त्रोत हो सकता हे। उच्च मृत्यु दर खरगोश पालन की एक मुख्य समस्या है जिससे शशकशाला (खरगोश गृह) में मृत्यु दर अधिक होती है एवं बचे हुए खरगोशों की उत्पादन क्षमता मे गिरावट होने लगती है। खरगोशों में कुछ रोग ऐसे होते है जिससे खरगोश देखने में स्वस्थ लगता है परन्तु उसकी उत्पादन क्षमता एवं शारीरिक वृद्धि में कमी हो जाती है। खरगोशों में अधिकांश रोग उनके अनुचित रख–रखाव असंतुलित खान–पान के कारण होते है। चूंकि खरगोश में सस्ता एवं सफल उपचार संभव नहीं होता है। अतः मृत्यु दर को कम करने के लिए समुचित रख–रखाव, खान–पान व स्वास्थय प्रबंध की आवश्यकता होती है।

प्रायः यह पाया गया है कि खरगोशों में होने वाली बीमारियों में सर्वाधिक अनुभाग (80 प्रतिशत) पाचन तंत्र सबंधी बीमारियों का होता है। अतः खरगोश पालन को खरगोशों के बारे में निम्न सामान्य जानकारी होना आवश्यक होती है।

1. खान – पान सामग्री की वृहत श्रृखंला में से खरगोश चयनित (कुछ विशेष प्रकार के) आहार के प्रति ही आकर्षित होते है। सामान्यतयाः खरगोश मुलायम व नमीयुक्त चारा अधिक मात्रा मे पसंद करते है।
2. खरगोशों को आहार में मीठापन रूचिकर लगता है। इनकी इस आदत का फायदा भूखे रहने वाले खरगोशों को दवा आदि फलो के गुच्छे के साथ आसानी से देने में लिया जा सकता है।
3. खरगोशों में अकेलापन व बोरियत होने पर विनाशकारी आदते हो जाती है जिनको रोकने हेतु ताजा हरा चारा व विभिन्न प्रकार की सब्जियां खिलाना चाहिए।
4. खरगोश उच्च तापमान की तुलना में सर्दी को सुगमता से सहन करते है। शशकशाला में 28°C से अधिक तापमान नहीं होने देना चाहिए। अधिक तापमान होने पर खरगोशो में पानी पीने की तीव्रता में बढ़ोतरी नही होने से मृत्यु दर में बढोतरी होती है।
5. खरगोश पालक स्वस्थ एवं रोगी खरगोश की पहचान निम्न लक्षणों के आधार पर कर सकता है।

## खरगोशों के लक्षण

1. शरीर पर बालो में चमकीलापन
2. चमकीली आँखे होना
3. अच्छे से और जल्दी खाना खाना
4. तेजी से शारीरिक वजन बढना
5. आँख, नाक व मल द्वारा से स्त्राव नहीं होना
6. बाह्य वातावरण से संवेदनशील होना
7. बालों में रूखापन होना व गिरना
8. आँखो में सुस्ती होना
9. खाना खाने के प्रति अरूचि होना
10. शारीरिक वजन में कमी होना
11. नाक व मलद्वार से स्त्राव बहना
12. कमजोर व उदास होना, बाह्य वातावरण व शोरगुल के प्रति उदासीन होना

**आहार–तंत्र संबधित रोगः**– खरगोश में इस तंत्र की बीमारियाँ सर्वाधिक होती है। खरगोशों के आहार में रेशे की मात्रा अधिक होने पर आंत्र–शोध (दस्त) रोग का प्रभाव कम होता है। आहार में रेशे की मात्रा कम होने पर आंतो की गति कम हो जाती है जिससे खरगोशों में अपच, अधिक मात्रा में आहार का किण्वन अधिक देर तक आहार का आंतो में रूकना, अधिक मात्रा में विद्यमान जीवाणुओ में बदलाव होना अवश्यभावी है। इसके साथ ही खरगोशों को उच्च प्रोटीन युक्त आहार देने पर बाह्य–वातावरण में अमोनिया गेस की अधिक मात्रा होने से श्वसन संबंधी रोग बढने का खतरा बना रहता है।

**(1) आंत्र शोध (दस्त रोग)** :– पतले दस्त से फड़किया जैसे लक्षण व मृत्यु होने के लक्षण के साथ दस्त रोग खरगोशों में सामान्य व बहुतायत से होने वाली बीमारी है। माँ से बच्चो को अलग करने के तुरंत बाद यह रोग एक महामारी के रूप में फैलता है एवं कभी – कभी मृत्यु दर 80% तक हो जाती है। दस्त रोग विभिन्न प्रकार के होते है, जिनका विवरण निम्नानुसार है।

**(अ) म्यूकोईड (Mucoid) दस्त रोगः**– यह असंक्रामक रोग है, सात से चौदह सप्ताह की उम्र वाले युवा खरगोशों में इस रोग का प्रकोप सामान्यतया पाया जाता है। रोग के कारण खरगोश को भूख न लगना, उबासी लेना, वजन में कमी होना, दस्त लगना, अपच होना तथा बड़ी आंतो द्वारा अधिक मात्रा में श्लेष्मा उत्पन्न करना शरीर का तापमान कम होना, शरीर में पानी की कमी होना, दांतो का किटकिटाना, प्रमुख लक्षण है। आहार में परिवर्तन (कम मात्रा में रेशे युक्त आहार देने पर) आतों में अम्लता परिवर्तन से अधिक मात्रा में वसीय अम्लों के उत्पादन व अवशोषण होने से सूक्ष्म जीवाणुओ की संख्या से अधिक श्लेष्मा का उत्पादन होता हे। कभी–कभी अन्य तनाव वाली परिस्थितियाँ जैसे अधिक मात्रा में जीवाणुनाशक दवाओं का प्रयोग, एक जगह से दूसरी जगह ले जाना आदि से भी इस रोग का प्रभाव अधिक होता है।

रोग की रोकथाम हेतु आहार में रेशे की अधिक मात्रा रखना चाहिए। रोगी खरगोशों को जीवाणुनाशक दवा आहार में मिलाकर देवें। शरीर में पानी की कमी रोकने हेतु पर्याप्त मात्रा में पानी (नमक चीनी मिला हुआ) पिलावें।

**(ब) डाइटेरोटोम्सीमीया रोग** :– यह रोग त्रुटिपूर्ण आहार के कारण होता है। तीन से छः सप्ताह की उम्र वाले दूध छुड़ाए खरगोशो में इस रोग का प्रभाव देखा जाता है। तीव्र रूप में इस रोग के होने पर खरगोश द्वारा भूख नहीं लगना, मल से सना होना प्रमुख लक्षण है। जैसे जैसे बीमारी का समय बढता है खरगोश का शारीरिक तापमान कम हो जाता है तथा 24–48 घंटो में मृत्यु हो जाती है । रोग की रोकथान हेतु आहार में अचानक बदलाव नहीं करे तथा दूध छुडाए खरगोशों को उतम गुणवता वाला हरा चारा (18 से 20 प्रतिशत रेशे सहित) खिलावें।

**(स) कोली बेसिलोसिस** :– इस प्रकार का दस्त रोग ई–कोलाई नामक जीवाणुओं के संक्रमण से होता है। यह रोग 1 से 14 दिन के खरगोशो में सामन्यतया देखा जा सकता हे। पानी जैसे पतले दस्त होना एवं पेट व शरीर के पश्च भाग पर पीलापन लिए मल से सना होना प्रमुख लक्षण है। इस रोग का समय पर उपचार नही करने पर पैदा हुए नवजात खरगोशों में शत–प्रतिशत तक मृत्यु दर हो सकती है। दूध छुड़ाने के पश्चात भी खरगोशों में यह रोग होता है परंतु अधिक उम्र वाले खरगोशो में रोग की तीव्रता वजन में कमी व मृत्यु दर कम होती है। रोगी खरगोश का उपचार हेतु जीवाणुनाशक दवा जैसे सल्फा एवं ट्राईमिथोप्रिम (30 मिग्रा/किग्रा दिन में दो बार), एनरोफलोक्सीन (10 मिग्रा/किग्रा दिन में दो बार) प्यूराजोलिडोन आदि देनी चाहिए। नमक व चीनी युक्त पानी की प्रचुर मात्रा उपलब्ध करवानी चाहिए। पानी का स्त्रोत परिवर्तन करें तथा साफ – सफाई का उत्तम व्यवस्था करें।

**(द) टीजरस (Tizzers dison) रोग** :– यह क्लास्ट्रीडियम, पीलीफोर्मिस नामक जीवाणुओं से उत्पन्न होता है तथा तनाव–युक्त परिस्थितियों जैसे शशकशाला में अधिक भीड़ होना, पर्याप्त रूप से साफ–सफाई नहीं होना, उच्च तापमान होना

रोग की तीव्रता बढाती है। प्रभावित खरगोशों में पानी जैस दस्त, उदासीपन, शरीर में पानी की कमी तथा 48 घंटो के भीतर मृत्यु होना प्रमुख लक्षण है। इस रोग का प्रकोप दूध छुड़ाए खरगोशों में अधिक होता है। शव–परीक्षण पर यकृत (जीगर) में व हदय में जलन के निशान, आंतो की दीवारों में सूजन व जलन के लक्षण दिखाई देते है। इस रोग में जीवाणुनाशक दवाओं का प्रयोग अधिक प्रभावकारी नहीं होता है। अतः रोग के बचाव हेतु संभावित खरगोश को अलग रखे, शशकशाला मे साफ–सफाई की समूचित व्यवस्था करें, अधिक रेशे वाली आहार देवें तथा नमक–चीनी युक्त पानी का घोल पिलावें।

**(ई) काक्सीडियोसिस** :– यह रोग काम्सीडिया नामक परजीवी से कम उम्र वाले खरगोशों में अधिक रूप से पाया जाता है। रोग की तीव्रतम अवस्था में प्रभावित खरगोश में दस्त लगना, वजन में कमी होना, पेट में पानी भर कर फुलना, भूख न लगना तथा बालों व चमड़ी में रूखापन होना प्रखुख लक्षण है। इस रोग में परजीवी संकलित चारे दाना पानी से फैलते है। इस रोग में यद्यपि मृत्युदर कम है परतुं खरगोश की बढोतरी एवं उत्पादन क्षमता में कमी होने से खरगोश पालन मे हानि होती है। यह रोग दो प्रकार का होता है। यकृत की काम्सीडिया से खरगोश लगातार कमजोर होता हे। पेट निकल आता है, यकृत का आकर बढने लगता है एवं आँखो को पीलापन दिखाई देता है। इस रोग के बचाव हेतू निम्न उपाय करने चाहिए।

- तार की जाली के बने हुए और छत से लटकाएं जाने वाले पिंजरों का प्रयोग करें जिससे खरगोश की मिगनिया पिंजरों में इकटट्ठी न हो।
- बच्चों के माँ के पास 5–10 मिनट के लिए केवल दूध पिलाने के छोड़ दें।
- वयस्क खरगोशों को छोटे खरगोशों से अलग रखें। शशकशाला में पहले छोटो खरगोशों की देखभाल करें।
- शशकशाला में साफ–सफाई की समूचित व्यवस्था करें।
- प्रभावित खरगोशों के मिगनियों की जाँच के आधार पर सल्फा म्यूनोसेलिन नामक दवा (0.025 प्रतिशत दाने में, या 0.04 प्रतिशत पानी में) लगातार दो सप्ताह तक देनी चाहिए।

**(2) ट्राईफोविजार/बालो का गुच्छा (Hair ball)** :– खरगोशों को उच्च कार्बोहाइड्रेट व कम रेशे वाले आहार देने पर तथा तनाव ग्रस्त वातावरण में रखने पर उनमें अपने बालों को नोच–नोच कर खाने की आदत होने से यह रोग होता है। प्रभावित खरगोश भूख नहीं लगना, मल उत्सर्जन में कमी होना या नहीं होना, पेट फुलना तथा पेट को सहलाने पर ठोस चीज का आभास होना प्रमुख लक्षण है। साथ ही इस रोग के कारण खरगोश पानी कम पी पाता है, सुस्त हो जाता है, वजन में कमी होती है। शुरूआती दौर में खनिज तेल (जैसे तरल फेटाफिन), प्रोटीन पचाने वाले एजांइम (जैसे ब्रोमालिन, पेपेईन–पाईनपल व पपीता द्वारा) तथा अधिक मात्रा में पानी पिलाने से रोग का प्रभाव कम कर सकते है। इसके साथ ही शशकशाला में तनाव युक्त परिस्थितियों का निवारण करें।

**श्वसन तंत्र संबधी बीमारियाँ :**

**पाश्च्यूरीलोसिस** :– यह एक जीवाणु नामक रोग है जो श्वसन नलिका में सामान्यतया जाये जाने वाले पाश्च्यूरीला मल्रोसीडा नामक जीवाणु से होता है। शुरूआती दौर में नाक से स्त्राव बहना, आँखो से पानी गिरना, सिर हिलाना, छीकें आना या श्वास लेते हुए आवाज करना तथा वजन में कमी होना आदि लक्षण है। यह रोग खरगोश पर अत्यधिक तनाव युक्त वातावरण होने तथा प्रतिकुल मौसम या अचानक मौसम परिवर्तन के दौरान शीघ्रता से फैलता है। रोग के उपचार हेतु ट्रेटासाईक्लीन पाउडर दाने में मिला कर देने या एनरोफलोप्सीलीन का इंजेक्शन लगावें। रोग की रोकथाम हेतु तनाव–कारक को दूर करते हुए शशकशाला में साफ–सफाई व हवा व नमी की समुचित व्यवस्था करें।

**न्यूमोनिया** :– यह रोग जीवाणुओं या विशाणुओं द्वारा फेफड़ों में संक्रमण से होता है। शशकशाला में अमोनिया की मात्रा अधिक होने पर, साफ–सफाई की समुचित व्यवस्था नहीं होने पर तथा तनावग्रस्त परिस्थितिया होने पर रोग का प्रभाव ज्यादा होता है। प्रभावित खरगोशों के तापमान में वृद्धि, श्वास लेने में कठिनाई, नाक बहना व भूख न लगना प्रमुख लक्षण है। रोगी खरगोश का उपचार कारणों के निदान के आधार पर एण्टीबायोटिक व बुखार कम करने वाली दवा देकर किया जाता है।

**अन्य बीमारियां** :

**मवादयुक्त गांठे (Abscess)** :– ये जीवाणु के सक्रमंण से होती है। प्रभावित स्थान पर त्वचा में उभार होता है। यें शरीर पर किसी भी स्थान पर हो सकती है तथा खुरचने पर घाव मैं परिवर्तित हो जाती है। उपचार हेतु गाठों के चारों तरफ से बाल काटकर, गठान में चीरा लगाकर मवाद को निकालें एवं मैगनीशीयम सल्फेट व एन्टीबायोटिक दवा से ड्रेसिंग करें।

**फंगल सक्रमण** :– इस रोग में त्वचा में सुखापन, बालों का गिरना, आंखो की पलकों में सूजन व पानी जैसा स्त्राव होना, शरीर पर लाल रंग के चकते होना प्रमुख लक्षण है। रोगी खरगोशों को अन्य स्वस्थ खरगोशों से अलग रखें तथा पशु चिकित्सक की सलाहनुसार उपचार करावें।

**दाद (Ring warm)** :– इसके लक्षण समान्यतसा सिर पर दिखाई देते है। हालांकि कभी–कभी पूरे शरीर पर भी हो सकते है। घोलाकार रूप से बालों का गिरना, पीलापन लिए खुरंड का बनना व लगभग तीन सप्ताह में सूख कर गिरना एवं खुजली चलना प्रमुख लक्षण है। प्रभावित रोग को फफुंदनाशक दवाऐं युक्त मल्हम (मिकोना जोल, क्लोट्राईमे जोल) लगाना चाहिए। मिसयोपुलविन (25 mg किग्रा.) दाने के साथ प्रतिदिन दो सप्ताह तक देवे तथा रोगी खरगोश को स्वस्थ पशु से अलग रखें।

**त्वचा की खुजली (Mange)**:– अति सूक्ष्म बाहय परजीवियो (माईट्स) के द्वारा यह रोग होता है। ये परजीवी त्वचा के अन्दर घुस कर त्वचा में सूजन पैदा करते है। पशु द्वारा खुजली चलने पर पेरों से बार–बार प्रभावित स्थान पर खुजलाने से बालों का गिरना प्रमुख लक्षण है। प्रभावित पशु को अलग रखें तथा उपयुक्त कीटनाशक दवा का मलमह लगावें। आईवरमेन्टिन का इंजेक्शन भी इस रोग में कारगर होता है।

**कान की खुजली (Ear conlcer)**:– यह रोग बरूथियों (mites) के द्वारा होता है। इससे प्रभावित खरगोश में कान के आधार पर खुरंट जमा होने लगता है। कान में खुजली चलने से खरगोश बार–बार अपना सिर हिलाता है तथा पिछले पैरों से कान के खुजलाता है। रोगी खरगोश के उपचार हेतु एस्के बियोल का लेप सप्ताह में दो बार करें या आईबरमेक्टिन नामक दवा के उपचार का इंजेक्शन 14 दिन के अतंराल पर दो बार लगावें। प्रभावित खरगोशो को स्वस्थ खरगोशों से अलग रखे तथा पिंजरों का पाश्तुरिकरण (गर्म करके, धुप में रखकर) करे।

**कान का बहना (otitis)**:– नाक से कान के मध्य तक पाश्चयूरिला मल्टोसीडा नामक जीवाणु के संक्रमण फैलने से यह रोग होता है। इस रोग में कान में भारीपन होना स्त्राव (मैल) बहना व सुख कर जमने से खरगोश बार–बार गर्दन टेडी करता है तथा कानों का खुजाता है। उपचार व रोकथाम हेतु पाश्चरिलोसिस में दर्शाये गये उपाय करे।

**घुटने पर घाव**:– घुटनों पर चोट लगने एवं संक्रमण होने पर यह रोग होता है। पिंजरों में गंदगी होना, पिंजरों के तार का गोलाई में नही होना, जाली का आकार सही नहीं होने पर घुटनों का बार–बार रगड खाना आदि से यह रोग होता है। सामान्यतः पिछले पैरों में घाव होकर खुरंड जमा हो जाता है। अगले पैरों के तलवे भी रोग ग्रसित हो जाते है। वजन में भारी खरगोशो में यह रोग ज्यादा होता है। प्रभावित रोगी के घावों को लाल दवा के पानी से धोकर लेरेक्सेन हिमेक्स या अन्य

जीवाणुनाशक मल्हम लगावें। पिंजरे में गीलापन नहीं रखें। साफ–सफाई का समुचित प्रंबध करें एवं पिंजरे के लिए सही गोलाई लिए तारों का प्रयोग करे।

**नवजात खरगोशों में मृत्यु के कारण** :–

- मादा खरगोश द्वारा जन्म के तुरंत बाद पैदा हुए बच्चों को खा जाना।
- मादा खरगोश द्वारा अपने बच्चों को दबा कर मार देना।
- मादा खरगोश द्वारा बच्चों के लिए घोंसला का निर्माण न करना तथा घोंसले के बाहर जाली पर बच्चे पैदा करना।
- मादा खरगोश में दूध की कमी होना या मादा द्वारा दूध न पिलाना।

उपरोक्त समस्याए प्रथम बार प्रसव वाली मादा खरगोश में देखी जाती है एवं इसके प्रमुख कारण निम्न हैः

- बच्चै पैदा करते समय पीने के पानी की कमी होना।
- मादा खरगोश के आहार में प्रोटीन एवं पोषक तत्वों की कमी होना।
- प्रसव के समय शशकशाला में अत्यधिक शोरगुल होना।

# खरगोशों की आहार व्यवस्था

**रणधीर सिंह भट्ट, आर्तबन्धू साहू एवं सुरेन्द्र कुमार सांख्यान**

भारत जैसे देश में जहाँ जनसंख्या एवं पशु संख्या कि निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है तथा प्रति इकाई उत्पादकता एक आयाम प्राप्त कर चुकी है। इस अवस्था में ऐसे उद्यमों की आवश्यकता महसूस की जा रही है जो कि कम स्थान, समय एवं लागत में किसानों को अधिक मुनाफा दे सके। इस कड़ी में हमारे देश में खरगोश पालन के व्यवसाय एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखा जा सकता है जो कि तीनों ही बातों को पूरा करता है। लेकिन इसे अपनाने से पहले इसकी आहार व्यवस्था क्या होनी चाहिए एवं उसकी कितनी आवश्यकता है उसकी जानकारी होना आवश्यक है। खरगोश पालन में सबसे अधिक खर्च (कुल खर्च का 70–80%) आहार पर होता है। इसलिए खरगोश पालन से आमदनी का सीधा सम्बन्ध उनके आहार पर किए गये खर्च से है तथा उचित आहार व्यवस्था से ही आहार खर्च को कम करके अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जिसके लिए खरगोशों के आहार के बारे में जानकारी होना जरूरी है।

खाद्य अवयवों से शरीर को उर्जा प्रदान करने वाले पोषक तत्व जैसे कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज पदार्थ तथा विटामिन प्राप्त होते है। पशु खाद्य को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया गया है– चारा तथा दाना। खरगोशों को दाना गोली के रूप में अथवा चूरे के रूप में दिया जा सकता है । गोली के रूप में खरगोश दाना अच्छी प्रकार से खाता है तथा इसमें दाना बहुत ही कम व्यर्थ होता है। परन्तु यह दाना मंहगा पड़ता है तथा दानें में क्या मिलाया गया है यह पता लगाना भी बहुत ही मुश्किल होता है। किसान भाई दाना अपने ही घरों में दलिये के रूप में बना सकते है। दलिये के रूप में खरगोश को खाने में कोई कठिनाई नहीं होती है। खाद्यान्न ज्यादा बारीक पिसे हुए नहीं बल्कि दले हुए होने चाहिए ताकि आहार व्यर्थ न हो तथा गर्मी की ऋतु में खरगोशों को छींकों की दिक्कत न हो । छोटे बच्चों को 15 दिन का होने पर दाना देना शुरू करना चाहिए। दाना हमेशा पीसकर देना चाहिए। क्योंकि गोलीय दाना प्रायः छोटे बच्चों की श्वास् नली में फंस कर अचानक मृत्यू का कारण बनता है। पहले हफते में खरगोश के बच्चे 5 ग्राम दाना प्रतिदिन खाते हैं। जो दूसरे सप्ताह 10, तीसरे सप्ताह 20 और विनिंग (छठे सप्ताह) तक 30 से 40 ग्राम प्रतिदिन पहुंच जाता है। 60 से 65 दिन के खरगोश को लगभग 50 से 60 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए। तथा 4 से 6 महिने के खरगोश को 80 से 100 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए। ग्याभिन एवं दूध देने वाली मादाओं को हर समय दाना एवं चारा उपलब्ध होना चाहिए। नवजात बच्चों को दूध दो समय (सुबह–शाम) अपने सामने पिलाना चाहिए। प्रायः ऐसा देखा गया है कि मादा कभी कभी दूध पिलाते समय बच्चों के उपर पैर रख देती हैं। जो कि अनावश्यक मृत्यूदर को बढ़ा देती है जिसका सीधा प्रभाव आमदनी पर पड़ता है।

हमारे देश में खरगोशों को आहार में दाना अलग तथा घास पत्तियां अलग से दी जाती हैं। इस विधि में जो दाना बनाया जाता है उसमें प्रोटीन, ऊर्जा व अन्य पोषक तत्वों की मात्राा ज्यादा रखी जाती है। ताकि पत्तियों व घास के पोषक तत्वों की कमी पूर्ति हो सके। ऐसे आहार में कुल आहार का 70% सूखा द्रव्य दानें के रूप में तथा बाकी का 30% चारे के रूप में दिया जाता है। इसका मतलब यह हैं कि एक व्यस्क खरगोश को एक दिन में 120 ग्राम दाना तथा 200 से 250 ग्राम हरा चारा जैसे वरसीम, जई, क्लोवर, फैस्कों, राई घास तथा विभिन्न प्रकार की पत्तियां आदि देना चाहिए। पश्चिमी देशों में घास तथा दाना दोनों को एक साथ मिलाकर गोलीय आहार बना दिया जाता है जिससे खरगोश को अलग से घास की जरूरत नहीं पड़ती। हम अपने देश के अनुसार खरगोश की शारीरिक आवश्यकता के अनुसार दाने में निम्नलिखित खाने की सामग्री नीचे दिए गए अनुपात में मिला सकते है।

| | बढ़ते बच्चे | ग्याभिन व दूध देती मादायें | व्यस्क |
|---|---|---|---|
| मक्की | 25 | 25 | 20 |
| जौ | 8 | 8 | —— |
| गेहूँ चोकर | 10 | 7 | 20 |
| राईस ब्रान | 13 | 13 | 20 |
| राईस फक | — | 3 | 8 |
| मूंगफली खल | 20 | 17 | 10 |
| सूरजमूखी खल | 5 | 8 | 10 |
| सोयाफलेक्स | 5 | 5 | 3 |
| मछली चूरा | 2 | 2 | 2 |
| शीरा | 5 | 5 | 5 |
| नमक | 0.5 | 0.5 | 0.5 |
| मिनरल मिक्चर | 1.5 | 1.5 | 1.5 |

आहार बनाते समय यह बात हमेशा घ्यान रखनी चाहिए कि खाद्यान्न साफ सुथरे हों तथा उनमें किसी भी प्रकार की फफुंदी आदि नहीं उगी हो। प्रायः यह देखा गया है कि बरसात के दिनों में मक्की, मूँगफली की खल एवं खुले अनाजों में फफूंद उगी मिलती है जो अफलाटाक्सीन नाम एक जहर पैदा करती है तथा खरगोशों में महामारी का कारण बनती है। राईस पालिस आदि कुछ ऐसे खाद्यान्न हैं जो कि ज्यादा तेल होने की वजह से रेनसीड विकृत गंध वाले व बासी हो जाते हैं खरगोश ऐसे आहार को नहीं खाता है।

**<u>खरगोशों के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता</u>** – यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है कि खरगोश के आहार में पोषक तत्वों की मात्राा कितनी होनी चाहिए। पोषक तत्वों एवं आहार की मात्राा खरगोशों की उम्र, अवस्था एवं मौसम के साथ बदलती हैं। खरगोशों को मुख्यः तीन श्रेणीयों में वांटा गया है– बढते बच्चे, व्यस्क व ग्याभिन व दूध देती मादाये।

| | बढते बच्चे (0–6 महीने) | व्यस्क (6 महीने से उपर) | ग्याभिन व दूध देती मादायें |
|---|---|---|---|
| प्रोटीन (%) | 16–18 | 12–14 | 15–17 |
| वसा (%) | 3–5 | 2 | 3–5 |
| ऊर्जा (किलो कैलोरी/कि. ग्रा.डी. ई.) | 2700 | 2200 | 2400–2600 |
| रेशा (%) | 8–10 | 12–14 | 10–12 |
| विटामिन ए (I.U.) | 8000 | 6000 | 8000 |
| लाईसिन (%) | 1 | 0.5 | 1 |
| कुल सूखा द्रव्य/दिन (ग्राम) | 100–110 | 150–180 | 200–250 |

ऊपर दी गई पोषक तत्वों की मात्रा उस अवस्था के लिए बतायी गई है जहां दाना व घास दोनों को गोली बनाकर खिलाया जाता है। परन्तु हमारे देश में प्रचलित प्रणाली में जहां घास और दाना अलग अलग खिलाया जाता है पोषक तत्व दाने में ज्यादा रखे जाते हैं, ताकि वह घास के पोषक तत्वों को जोडने पर ऊपर वर्णित मात्रा अनुसार मिले।

| | बढते बच्चे ( 0–6 महीने) | व्यस्क (6 महीने से उपर) | ग्याभिन व दूध देती मादायें |
|---|---|---|---|
| प्रोटीन (%) | 20–22 | 16–18 | 19–22 |
| वसा (%) | 3–5 | 2 | 3–5 |
| ऊर्जा (किलो कैलोरी/किग्रा.डी.ई.) | 3000 | 2600 | 2800–3000 |
| रेशा (%) | 6–8 | 10–12 | 8–10 |
| लाईसिन (%) | 1.5–2.0 | 0.9–1 | 1.5–2.0 |
| दाना (ग्राम) | 50–80 | 100–120 | 150–180 |
| सूखा द्रव्य धास | 30–50 | 50–60 | 50–70 |
| मुरझाया हुआ धास | 100–150 | 150–200 | 150–250 |

**खरगोश आहार में चारे**

खरगोश आहार में उपयोग होने वाले चारे में रेशेदार पदार्थ (फाईबर) अपेक्षाकृत अधिक तथा सुपाच्य पोषक पदार्थ (कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज पदार्थ, विटामिन, इत्यादि) कम मात्रा में होते हैं। खरगोश को कुल आहार का 30 से 40 प्रतिशत आहार चारे के रुप में देना आवश्यक है क्योंकि बडे पशुओं की तुलना में खरगोश की पाचन–क्रिया बहुत तेज होती है। बड़े पशुओं में जो खाया हुआ आहार 18 से 24 घंटे में मल के रूप में शरीर से बाहर आता है, खरगोशों में वही आहार 8 से 16 घंटे में बाहर आता है। इस तेज गति को कायम रखने के लिए ही खरगोश आहार में चारे (रेशेदार पदार्थ) का खास महत्व है। यदि खरगोश आहार में रेशेदार पदार्थ की कमी होती हैं तो उसकी बडी आंत में अपच पदार्थ अधिक देर तक रुक जाते है जिससे हानिकारक जीवाणू एक ऑटोइनटोक्सिकेशन नामक बिमारी पैदा करते हैं। यह बिमारी प्रायः आन्त्रशोध का रूप ले लेती है। ऊन वाले खरगोशों (अंगोरा) में चारे का महत्व और भी बढ़ जाता है, क्योकि चारे की कमी से खरगोश अपने या पास वाले खरगोश के बाल खाने शुरू कर देते हैं। ये बाल उनके पेट (आमाशय) में इक्टठे होकर एक गुच्छे (हेयर बॉल) का रूप धारण कर लेते हैं, क्योंकि वहां न तो यह बालों का गुच्छा पचता हैं और न ही बाहर निकल पाता हैं, परिणामस्वरुप आहार नली में रूकावट के कारण खरगोश कुछ दिन बाद मर जाता है। इसलिए खरगोश के आहार में चारा बहुत महत्वपूर्ण है और इसकी विस्तृत जानकारी होना भी अति आवश्यक है। खरगोश को खिलाये जाने वाले चारे निम्नलिखित है–

**जई (Oat)**: जई के चारे में 11–13% प्रोटीन तथा 25% रेशेदार पदार्थ होता है। खरगोश आहार में इसे 50% डाला जा सकता है, परन्तु अच्छे परिणामों के लिए इसे 25% ही खिलाना चाहिए। ऊन उत्पादक खरगोश में इसके बहुत अच्छे परिणाम पाये गये है। सर्दी के दिनो मे पहाडी इलाको मे जब हरे चारे की अत्यन्त कमी होती है उस समय यह एक चारे का महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

**मक्का (Maize)**: यह मानसून वर्षा ऋतु में उगने वाला चारा है। खरगोश आहार में इसे 20–25% तक इसका समावेश किया जा सकता है। यदि इसे पकने से पूर्व हरा काटकर छोटे–छोटे टुकड़ो के रूप मे सूखा लिया जाये तो यह सर्दी के दिनो मे एक उत्तम चारे का काम करता है । ऐसा प्राय देखा गया है कि जब मक्की और लोबिया को इक्टठ्ा उगाया जाता है तो इसकी पोषक क्षमता बढ़ जाती है।

**फैस्को घास (Tall fescue)**: यह ठण्डें प्रदेशों में पाया जाने वाला घास है। सर्दियों में जब हरे घास की कमी होती है यह खरगोशों के लिए चारे का एक अच्छा स्रोत है। इसमें 13–15% प्रोटीन तथा 25–30% रेशेदार प्रदार्थ होता है। खरगोश आहार में इसे 25% तक मिलाया जा सकता है।

**राई घास (Rye grass)**: यह भी ठण्डें प्रदेशों के लिए एक अच्छा घास है जो एक बार उगाने के बाद अपने आप हर वर्ष उगता है । इसमें प्रोटीन 8–10% तथा रेशेदार प्रदार्थ 30–40% होता है। खरगोश आहार में इसे 15–20% उपयुक्त माना गया है।

**बरसीम (Berseem)**: यह एक फलीदार (दलहनी) घास है जो कि भिन्न–2 जलवायु में अलग–2 समय पर उगता है। मैदानी भागो में जहॉ तापमान थोड़ा अधिक होता है यह दिसम्बर से अप्रैल तक उगाया एवं काटा जा सकता है, परन्तु ठण्डें प्रदेशों में यह मार्च से जून तक ही उगाया जा सकता है। इसमें 18–22% प्रोटीन तथा 20–25% रेशेदार प्रदार्थ होता है। खरगोश के आहार में इसका 50% समावेश किया जा सकता है।

**लोबिया (Cow pea)**: यह भी एक दो दाने वाली फलीदार बेल है जो की वर्षा ऋतु में खरगोश के लिये उत्तम चारे का स्रोत है । इसमे प्रोटीन की मात्रा 15–20 % तथा रेशा 22–28% होता है । खरगोश आहार में इसे 10–20% तक अच्छें परिणामों के लिये खिलाया जा सकता है।

**क्लोवर (White clover)**: ये सदियों में उगने वाले चारे है। जिनमें 18–22% प्रोटीन तथा 20–25% रेशा होता है । खरगोश आहार में इन्हें 40–60% खिलाया जा सकता है।

**बियूल (Biul)**: यह एक बहुत ही लाभकारी वृक्ष है जिसकी पत्तियां सर्दियों में मिलती है। खरगोश इसकी पत्तियों के साथ–2 इसकी नर्म टहनियों एवं छाल को भी खाता है। इसकी पत्तियों में 18–20% प्रोटीन तथा 6–8% वसा होती है। खरगोश आहार में इन्हें 40–45% खिलाया जा सकता है।

**रोबिनिया (Robinia)**: यह एक फलीदार वृक्ष है जिसकी पत्तियां मानसून मौसम मे मिलती है। इसकी पत्तियों में 18–22% प्रोटीन तथा 6–8% वसा होती है। इसे मॉस वाले खरगोशों के आाहार में 50% तथा ऊन वाले खरगोशों के आहार में 35–40% खिलाया जा सकता है।

**शहतूत (Mulberry)**: यह शीतोष्ण जलवायु में होने वाला अत्यन्त लाभकारी वृक्ष है जो न केवल रेशम के कीडों के लिए परन्तु खरगोशों के लिए भी चारा प्रदान करता है। इसकी पत्तियों मे 13–16% प्रोटीन तथा 4–6% वसा होती है। इन्हे 35–40% खरगोश आहार में मिलाया जा सकता है।

**पेपर मलबरी (Paper mulberry)**: यह भी शीतोष्ण जलवायु में पाये जाने वाला वृक्ष है जिसकी पत्तियां वर्षा ऋतु में मिलती हैं। इसके पत्तों में 10–12% प्रोटीन तथा 3–5% वसा होती है। खरगोश आहार में इन्हे 50–60% तक मिलाया जा सकता है।

**कुडजूबेल (Kudzu vine)**: यह एक अत्यन्त लाभकारी बेल है जो कि मृदा संरक्षण के साथ–साथ खरगोश के लिए चारा भी प्रदान करती है। यह एक बार लगाने के बाद हर साल अपने आप उगती है तथा तेजी से फैलती है। इसकी पत्तियों में 16–20% प्रोटीन होती है। अच्छे परिणामेां के लिए 25% तक खरगोश आहार में मिलाया जा सकता है।

**कचनार (Kachnaar)**: इस वृक्ष की खास वात यह है कि सर्द ऋतू में भी खरगोशों को हरी पत्तियां प्रदान करता है। खरगोशों में इसकी पत्तियों से इतने अच्छे परिणाम नहीं है इनको 10–15% तक ही खरगोश आहार में खिलाया जा सकता है। इन पत्तियों को हमेशा दूसरी पत्तियों के साथ मिला कर खिलाना चाहिए।

**बॉन (Querques)**: यह काफी ऊंचाई पर पाये जाने वाला वृक्ष है जो सर्द ऋतू में पशुओं के लिए चारा प्रदान करता है। प्रयोगों में पाया गया है कि यह खरगोश के लिए बडे पैमाने पर नहीं खिलाया जा सकता क्योंकि इसमें टैनिन नामक हानिकारक प्रति पोषक तत्व होता है। इसे दूसरे अच्छे चारों के साथ खिलाना चाहिए तथा 10–15% से ज्यादा खरगोश आहार में नहीं खिलाना चाहिए।

**काहू (Kahu)**: यह भी शीतोष्ण जलवायु में पाये जाने वाला वृक्ष है जिसकी पत्तियां सर्द ऋतू में खिलाने के काम आती हैं। खरगोश आहार में इसे 10–15% तक ही खिलाया जा सकता है क्योंकि इसमें भी टैनिन नामक हानिकारक तत्व होता है।

**अन्य (Others)**: इनके अतिरिक्त रसोई घरों में बचे हुए सब्जियों जैसे मटर, गोभी, मूली, गाजर, शलजम के छिलके तथा सरसों एवं पालक के पत्ते भी खरगोशों को खिलाए जा सकते हैं । बागानों में व्यर्थ सेब व पलम की पत्तियां भी दूसरे चारो के साथ मिला कर खिलायी जा सकती है। इन चीजों को खिलाते समय एक बात हमेशा ध्यान रहनी चाहिये कि ये साफ सुथरी हो तथा इन्हे दूसरे चारो के साथ मिलाकर सभी जानवरो को थोडा– थोडा खिलाना चाहिये। एक ही जानवर को अधिक मात्रा मे खिलाने पर हानिकारक हो सकते है। चना, सोयाबीन, उड़द, राजमा, मसूर, मटर, लोबिया आदि ऐसी दलहनी फसलें है जिनके दाने निकालते समय प्राप्त फलियों के छिलके, नरम पत्तियॉ तथा सूखी बेल एक बहुत ही पोष्टिक आहार प्रदान करते है जो कि खरगोशों को सर्दियों मे खिलाए जा सकते हैं ।

खरगोश को चारा खिलाते समय यह बात हमेशा ध्यान रखनी चाहिए कि चारा एकदम हरा न हो। चारे को काट कर 2–3 घंटे धूप में सूखा कर ही खिलाना चाहिए अन्यथा खरगोशों में यह दस्त का कारण बनता है। फलीदार चारों को कभी भी एकदम हरा न खिलायें क्योंकि यह प्रोटीन एवं पानी मे प्रचुर होने की वजह से आंत मे झाग बनाते है तथा खरगोशों मे आन्त्रशोध का कारण बनते है । चारे को शाम के वक्त ही डालें ताकि वह रातभर उसे आराम से खा सके।

# भेड़–बकरी विपणन की समस्याएँ एवं निदान

**लीलाराम गुर्जर, सुरेश चन्द्र शर्मा एवं राजकुमार**

भेड़ व बकरी को राजस्थान की आर्थिक परिपेक्ष्य में देखने पर पाते हैं कि भेड़–बकरी हमारी आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। भेड़–बकरी से मांस, ऊन, मिंगनी एवं दूग्ध जैसे बहुउत्पाद प्राप्त होते है। आजकल देखा गया है कि भेड़ एवं बकरी पालन व्यवसाय मुख्यतयाः मांस उत्पादन के रूप में उभर के आया है लेकिन भेड़ एवं बकरी के विपणन की व्यवस्था प्राचीन विपणन तरीकों पर आधारित है। यह विपणन व्यवस्था असंगठीत बाजार के रूप में प्रचलित है। प्राचीन विपणन व्यवस्था के आधार पर भेड़ एवं बकरी पालकों को अपने जानवरों का सही एवं उचित मूल्य मिल पाना संभव नहीं है। इस प्राचीन व्यवस्था को बदलने में पॉलिसी बनाने वालों का ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। साथ ही भेड़–बकरी पालकों को संगठीत होकर या सहकारी समितियों के माध्यम से अपनी विपणन व्यवस्था को सुधारने हेतु प्राचीन व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता है। यह लेख वर्तमान में चल रही विपणन प्रणाली की खामियों एवं इनमें सुधार की आवश्यकता का उल्लेख करता है।

**वर्तमान विपणन प्रणाली में समस्याएँ–**

1. लघु रोमन्थी पशुओं की बिक्री के लिए मंडियों की संख्या बेहद अपर्याप्त है।
2. मंडियों में पशुओं को रखने, खिलाने–पिलाने की सुविधाओं का अभाव।
3. छंटाई एवं ग्रेडिंग की कमी तथा विभिन्न आयुवर्ग के पशुओं को बिचोलियों को एक साथ बेचना।
4. लघुरोमन्थी पशुओं के विपणन में बड़ी संख्या में बिचौलियों का होना।
5. मूल्य निर्धारण में किसी भी मानकीकृत प्रक्रिया का उपयोग नहीं किया जाता है।
6. पशुओं के बेचने में गुप्त और छिपी बोली अभ्यास और बिचौलियों के द्वारा अंतिम बोली की घोषणा होने तक विक्रेता कीमत से अनभिज्ञ होता है।
7. दूध उत्पादकों की सहकारी संस्था की तरह भेड़ पालकों के लिए जिन्स आधारित संगठन का अभाव एवं सहकारी विपणन के फायदे के बारे में जागरूकता का अभाव।
8. दूग्ध परिवहन की तरह लघुरोमन्थी पशु उत्पादकों के लिए पशु परिवहन सुविधा की कमी।
9. लघुरोमन्थी पशुओं के बाजार में सूचना व जानकारी का अभाव, पशु बाजार का एगमार्क नेट के अन्तर्गत नहीं आना व देश के सभी भागों में मूल्य–स्थिरीकरण के लिए राष्ट्रीय प्रणाली का अभाव।
10. पशुओं के लिए सहकारी विपणन, ऋण सुविधा व योजना का उपलब्ध नहीं होना।
11. लघुरोमन्थी पशुओं की मंडियों के नजदीक उचित बूचड़ खाने, अवशीतन प्लांट, वातानुकुलित परिवहन की व्यवस्था नहीं है। ये सुविधाएँ मांस निर्यात उद्योग की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है।
12. निर्माता–बुचड़खाना–अवशीतन प्लांट एवं मांस निर्यात उद्योग के बीच संबंध का अभाव।

13. उचित मूल्य पर अच्छी गुणवत्ता वाले मांस का उत्पादन और साथ ही मांस निर्यात को बढ़ावा देने के लिए उत्पादकों को लाभकारी रिटर्न प्राप्त न होने का मुख्य कारण उत्पादकों और निर्यातकों के बीच अनुबन्ध प्रणाली का अभाव।

14. लघुरोमन्थी उत्पादकों को सूखा, बाढ़ एवं महामारी जैसी प्राकृतिक आपदाओं के दौरान कम कीमत पर जानवरों की बिक्री को रोकने के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य या ऋण सुविधा, किसान क्रेडिट कार्ड की तरह के रूप में सरकार के समर्थन का अभाव।

**समस्याओं का निदानः–**

1. लघुरोमन्थी पशुओं की जनसंख्या के आधार पर प्रमुख उत्पादक राज्यों में विनियमित पर्याप्त बाजारों की स्थापना करना। मंडियों में पशुओं को रखने, खिलाई–पिलाई के लिए पर्याप्त बुनियादी सुविधाओं की आवश्यकता है।

2. प्रणाली में पारदर्शिता लाने और व्यापारियों की मिली भगत को रोकने के क्रम में खुली बोली प्रणाली का अभ्यास।

3. लघुरोमन्थी पशुओं के विपणन की देखभाल करने के लिए सरकार द्वारा सहकारी समितियों की शुरूआत करना। सहकारी समितियों के लिए निम्नसुविधाओं की आवश्यकता है जैसे–

    1. रखने, छंटाई करने, जानवरों के परिवहन की सुविधा।
    2. बाजार की जानकारी का प्रसार।
    3. अनुबन्ध खेती / जानवरों के प्रत्यक्ष बिक्री के लिए मांस उद्योग के लिए सहयोग।
    4. सहकारी समिति के सदस्यों को आपातकालीन समय में उत्पादकों की सहायतार्थ क्रेडिट कार्ड की सुविधा दी जाये।
    5. लघुरोमन्थी पशु उत्पादकों को समय–समय पर प्रशिक्षण दिया जाये।

4. पशुओं का उनके विभिन्न आयु वर्ग, शारीरिक वजन एवं स्वास्थ्य के आधार पर कीमत निर्धारण करने का मानकीकरण।

5. लघुरोमन्थी पशुओं के उत्पादन और खपत क्षेत्रों में मांस की कीमत के अन्तर को कम करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक कमेटी गठीत हो।

6. लघुरोमन्थी पशुओं के मांस–प्रसंस्करण की सुविधाएँ, नियमित बाजार व मंडियों के पास विशेष आर्थिक क्षेत्र स्थापित करने की आवश्यकता है। ये सुविधाएँ सरकार द्वारा सब्सिडी के माध्यम से मांस उद्योग को बढ़ावा देने हेतु प्रदान की जा सकतीहै।

7. विभिन्न योजनाओं के तहत रियायती ऋण सुविधा और मांस विपणन से जुड़े लोगा कें के प्रशिक्षण के माध्यम से मांस की दुकानों का आधुनिकरण किया जा सकता है।

# पशुपालकों को भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार द्वारा प्रदत्त योजनाऐं एवं सेवाऐं

राजकुमार, लीलाराम गुर्जर एवं अनिल परतानी

**भामाशाह पशु बीमा योजना**

यह योजना भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार के आर्थिक सहयोग से वर्ष 2016–17 से समस्त राजस्थान में लागू है। यूनाईटेड इंडिया इंश्योरेंस कम्पनी, जयपुर प्रदेश के समस्त जिलों में पशुओं के बीमा करने के लिये अधिकृत है। पशुओं के बीमे की दरे निम्न प्रकार से हैः

| विवरण | प्रिमियम की दरें | |
|---|---|---|
| | एक साल के लिये | तीन साल के लिये (एक मुश्त) |
| दुधारू जानवर (गाय, भैंस) | 2.79 प्रतिशत | 7.4 प्रतिशत |
| अन्य जानवर (भेड़, बकरी, सुअर) | 4.00 प्रतिशत | 10.5 प्रतिशत |
| बोझा ढ़ोने वाले जानवर (घोड़ा, गधा, ऊँट, बैल, भैंसा) | 3.50 प्रतिशत | 9.0 प्रतिशत |

बीमा राशि पर एस.सी./एस.टी./बीपीएल श्रेणी के पशु पालकों को 70 प्रतिशत एंव सामान्य श्रेणी के पशुपालकों को 50 प्रतिशत अनुदान देय होगा।

इस योजना के अन्तर्गत उन ही पशुओं का बीमा किया जायेगा जिसका किसी अन्य योजना में पशु बीमा न हुआ हो। योजना में प्रत्येक परिवार के अधिकतम पाँच गाय या भैंस का बीमा अनुदानित प्रिमियम दरों पर किया जायेगा। 10 छोटे पशुओं जैसे भेड़, बकरी, सुअर को एक गाय या भैंस के बराबर मानते हुए कुल 50 छोटे पशुओं का बीमा अनुदानित दर पर किया जा सकेगा। पशु की कीमत का मूल्यांकन पशु के स्वास्थ्य व दुग्ध उत्पादन क्षमता के आधार पर प्रचलित बाजार मूल्यानुसार पशु चिकित्सक, पशुपालक एवं बीमा कम्पनी प्रतिनिधि द्वारा आपसी सहमति से किया जावेगा। पशु पालक को अपने पशु का बीमा कराने हेतु नजदीकी पशु चिकित्सालय में सम्पर्क कर बीमा स्वीकृति फार्म भरना होगा। बीमित पशु की पहचान हेतु पशु को टेग लगाया जायेगा एवं पशु का एक फोटो भी खिंचा जायेगा। पशुओं को टेग लगाने एवं फोटो खिंचने का व्यय बीमा कम्पनी द्वारा वहन किया जायेगा। अनुदानित बीमा के लिये पशु की अधिकतम कीमत निम्नानुसार होगीः

| पशु | अधिकतम कीमत |
|---|---|
| दुधारू गाय | 40,000/– |
| दुधारू भैंस | 50,000/– |
| अन्य पशु (10 भेड़/10 बकरी/10 सुअर) | 50,000/– |
| भार ढ़ोने वाले पशु (ऊँट,/घोड़ा/गधा/सांड/पाडा) | 50,000/– |

नोटः–

1. बीमित पशु का टेग गिर जाने पर तुरन्त बीमा कम्पनी को सूचित कर नया टेग लगवाना होगा।
2. मृत पशु के टेग न लगे होने की स्थिति में बीमा कम्पनी बीमित राशि को देने से मना कर सकती है।
3. इस योजना का लाभ उन ही पशुपालकों को दिया जायेगा जिनका भामाशाह कार्ड बना हुआ है। पशुपालकों को अपने पशुओं का बीमा कराने हेतु निम्नलिखित दस्तावेज प्रस्तुत करने होंगे।

आवेदन पत्र, पशु का स्वास्थ्य प्रमाण पत्र, पशु के कान में टेग सहित पशु पालक का फोटो, भामाशाह कार्ड की प्रति, बीपीएल/एससी/एसटी से सम्बन्धित दस्तावेज की प्रति, बैंक का नाम व खाता संख्या, आधार कार्ड की प्रति, अपने हिस्से की प्रिमियम राशि। बीमित पशु की मृत्यु हो जाने की स्थिति में बीमा कम्पनी के अधिकृत कार्यालय या प्रतिनिधि को मोबाईल अथवा व्यक्तिशः पशु की मृत्यु होने पर तत्काल (अधिकतम छः घंटे के भीतर सूचित करना होगा), पशु की रात्रि के समय मृत्यु होने की स्थिति में अगले दिन सुबह सूचित करना होगा।

पशु की मृत्यु निम्न कारणों से होने पर ही क्लेम देय होगा,

- जैसे दुर्घटना (आग, बिजली, बाड़, आंधी, तुफान, भुकम्प, चक्रवात, अकाल)
- बीमा अवधी के दौरान होने वाली बीमारी या रोग से मृत्यु
- शल्यक्रिया के दौरान
- दंगा व फसाद

इसके अलावा जानबूझकर या दूर्भावनापूर्ण पहुँचाई गयी चोट, चोरी, गुप्त बिक्री इत्यादि होने पर क्लेम की राशि नहीं मिलेगी।

इससे सम्बन्धित ज्यादा जानकारी के लिए अपने नजदीकी पशु चिकित्सक से मिलें।

### गाय, भैंस, बकरी, सुअर खरीदने हेतु लोन

इस प्रकार हम देखते हैं कि बैंक भी किसानों को अपनी सेवाऐं लोन देने के रूप में दे रहे है। किसान भाई बैंको में जाकर लोन सबंधी अधिक जानकारी ले सकते हैं। हम यहाँ पर गाय, भैंस एवं भेड़ बकरी के व्यवसाय को शुरू करने हेतु लोन लेने की प्रक्रिया पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

किसान भाई को गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर का व्यवसाय शुरू करने के लिये लोन की आवश्यकता पड़ती है।

नाबार्ड बैंक इस तरह का व्यवसाय शुरू करने के लिये लोन सुविधा मुहैया कराता है। किसान को लोन लेने के लिये एक प्रोजेक्ट बनाना होता है जिसमें निम्नलिखित बाते दर्शायी जाती हैः

1. जानवरों की संख्या एवं उनकी कुल खरीद कीमत
2. जानवरों की चारा, दाना, दवाई और बाड़े इत्यादि का खर्च
3. जानवरों की बिक्री की उम्र एवं अनुमानित बिक्री की राशि
4. खरीद, रखने, रहन–सहन एवं बिक्री सम्बन्धि हिसाब किताब का लेखा जोखा

5. केश इन्फ्लो संबंधी विश्लेषण

6. लोन का रिपेमेन्ट, ब्याज दर एवं लोन चुकाने की अवधि

किसानों को उप्पर लिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखकर एक प्रोजेक्ट बनाना होता है एंव उसके साथ अपना फोटो आईडी, घर का पता, जानवरों को रखने की जगह का ब्योरा, वहाँ उपस्थित सुविधाओं का ब्योरा, जानवरों एवं उनसे प्राप्त उत्पादों को बेचने का तरीका इत्यादि का विवरण भी किसान को प्रोजेक्ट में करना होता है। इस प्रोजेक्ट के साथ किसान अपने जरूरी कागजात लगाकर बैंक में आवेदन कर सकता है। किसान को लोन राशि का कम से कम 10 से 15 प्रतिशत का इन्वेसमेंट स्वयं करना होता है।

बैंक ऑफ बड़ोदा, आई डी बी आई बैंक एवं अन्य बैंक उप्परलिखित लोन किसानों को प्रदान करने की सुविधाऐं दे रहे हैं।

**पशुधन निःशुल्क आरोग्य योजना**

पशुपालन विभाग राजस्थान सरकार द्वारा सन 2012 से किसानों के पशुओं को बिमारी से बचाने एवं बिमार जानवरों के इलाज हेतु पशुधन निःशुल्क आरोग्य योजना का प्रारंभ किया गया। इसके अन्तर्गत विभागीय पशु चिकित्सा संस्थाओं, गोशालाओं एवं शीवरों के माध्यम से अधिक से अधिक पशुओं का निःशुल्क उपचार कर पशुपालकों को लाभान्वित किया जाना है।

**योजना के प्रमुख उद्देश्यः–**

पशु निःशुल्क आरोग्य योजना के अन्तर्गत पशु स्वास्थ्य सेवाओं के लिये आवश्यक दवाओं का निःशुल्क वितरण किया जाता है ताकि पशुधन की चिकित्सा पर होने वाले खर्च में कटोती संभव हो सके।

धन के अभाव में पशु चिकित्सा सेवाओं से वंचित पशुओं का समय पर उपचार करना।

समय पर बीमार पशुओं के फलस्वरूप पशुओं की मृत्युदर में कमी लाना।

**लाभार्थी**

1. इस योजना के अन्तर्गत पशुचिकित्सा संस्थाओं पर चिकित्सा हेतु बहीरंग व अंतरंग में लाये गये पशु
2. विभागीय स्तर पर आयोजित पशुधन आरोग्य चल इकाई, पशु बांझ निवारण व अन्य पशु चिकित्सा शिविरों में आने वाले पशु
3. रोग, प्रकोप एवं आपातकालीन स्थिति को नियंत्रित करने हेतु प्रभावित प्रक्षेत्र के रोगी पशु
4. प्रशासन के स्तर से चिकित्सा हेतु निर्देशित पशु

इस योजनान्तर्गत पशुपालक द्वारा 2 रू. प्रति बड़ी पशु व 10 छोटे पशु के हिसाब से शुल्क की रसीद कटाई जाती है एवं उसके पशुओं का इलाज निःशुल्क किया जाता है। भेड़पालकों के लिये रोग प्रतिरोधक फड़किया का टीका 50 पैसे प्रति भेड, भेड़ माता 50 पैसे प्रति भेड़, पीपीआर का टीका 2 रूपये प्रति भेड़, मुहंपका–खुरपका रोग का टीका 2 रूपये प्रति भेड़ की दर से लगाया जाता है।

### बछड़ी/पाडी एवं दुग्ध प्रतियोगिता

पशुपालन विभाग द्वारा जिलों में पशु पालकों के श्रेष्ठतम पशुपालन के लिये प्रतिस्पर्धात्मक भावना विकसित करने हेतु तथा उन्नत नस्ल की अधिक दूध देने वाली गाय, भैंस एवं उनकी उत्कृष्ट बछड़ीयों, पाडी की पहचान करना प्रतियोगिता का मुख्य उद्देश्य है।

स्वस्थ पशुधन प्रतियोगिता में देशी नस्ल की गाय, भैंस और संकर पशुओं में सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक दूध देने वाली मादा तथा सर्वश्रेष्ठ बछड़ी/पाडी पशुओं का चयन कर पशुपालकों को पुरस्कृत किया जाता है।

प्रतियोगिता केवल अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के पशुपालकों के लिये ही आयोजित की जाती है एवं अन्य श्रेणी के पशुपालक प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते है।

प्रतियोगिता में बछड़ी/पाडी एंव दूग्ध उत्पादन हेतु गाय भैंस के लिये प्रथम तीन श्रेणी के लिये पशुपालकों को पारीतोषिक के रूप में नकद राशि एवं प्रमाण पत्र से पुरस्कृत किया जाता है।

### बांझपन निवारण शिविर योजना

पशुपालन विभाग की इस योजना के तहत समस्त जिलों में पशुधन की संख्या एवं पशुधन के आधार पर चार से पांच गांव के एक ग्रुप का बांझ निवारण शिविर लगाने हेतु चयन किया जाता है। चयनित गांव बांझ पशुओं के पशुपालकों की सुचि सर्वे कर तैयार की जाती है। प्रत्येक शिविर की अवधी पांच दिवस की होती है। प्रत्येक शिविर में बांझ पशुओं का इलाज किया जाता है। शिविर के आयोजन हेतु औषधियों का उपयोग पशुधन निःशुल्क आरोग्य दवा योजना के अन्तर्गत उपलब्ध औषधियों में से किया जाता है। इस शिविर के प्रत्येक सात दिवस के अन्तराल पर एक एक दिवस के तीन शिविरों का पुनः आयोजन किया जाता है। जिसमें उपचारित पशुओं की पुनः जांच की जाती है। पशुओं को आवश्यतानुसार हार्मोन चिकित्सा, डिवार्मिंग, मिनरल मिक्स्चर, विटामिल–डी, सोडियम ऐसीड फॉस्फेट, कोबाल्ट कोपर की गोलियां आवश्यकतानुसार दी जाती है। उपचार से जो पशु ताव में आये है उनमें कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है। कृत्रिम गर्भाधान के 60–90 दिन उपरांत गर्भ परीक्षण भी किया जाता है।

### बकरी पालन योजना

राजस्थान के गरीब किसान जो गाय या भैंस पालने में असमर्थ हैं, के लिये राज्य सरकार द्वारा बकरी पालन योजना लागू की गई है। इस योजना में 20 जिलों की दो–दो पंचायत समितियों का चयन कर बकरी पालकों को अनुदानित दरों पर सिरोही/जमनापारी/मारवाड़ी/जखराना नस्ल के बकरे उपलब्ध करवाये जाते है। प्रत्येक ग्राम पंचायत समिति के 1 से 10 गांवों में बकरी पालकों को पंजीकृत किया जाता है जिसमें कम से कम 25 बकरी पालक सदस्य हों। प्रति बकरा क्रय मूल्य पर 75 प्रतिशत अनुदान अधिकतम रूपये 5000 देय है। स्वयं सहायता समूह के सदस्यों एवं महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती है।

### तीन दिवसीय पशु पालक प्रशिक्षण शिविर

प्रदेश के पशु पालकों की स्थिति एवं उनकी कठिनाइयों को देखते हुये राज्य सरकार द्वारा तीन दिवसीय पशुपालक प्रशिक्षण शिविर आयाजित कराने का प्रावधान किया गया है। इन प्रशिक्षण शिविरों में पशुपालन की आधुनिक तकनीकों के जरिये पशुपालकों को पशुधन का व्यवहारिक ज्ञान, दुधारू पशुओं का चयन एवं रखरखाव, संतुलित आहार व रोग उपचार एवं

रोग निरोधक टीकाकरण, गाय व भैंस पालन, भेड़ व बकरी पालन, कुक्कुट पालन, शुकर पालन, अश्व पालन आदि की जानकारी प्रशिक्षण में उपलब्ध कराई जाती है। इस योजना का लाभ पशुपालन के इच्छुक पशुपालकों को दिया जाता है। महिला पशु पालकों को इसमें प्राथमिकता दी जाती है।

**एकीकृत पशुधन विकास केन्द्रों का विकास**

पशु नस्ल सुधार कार्यक्रम का विस्तार करने के उद्देश्य से राज्य के तीस जिलों में निजी क्षेत्र से परिणाम आधारित दो हजार एकीकृत पशुधन विकास केन्द्र खोले जाने प्रस्तावित है। जिनमें से एक हजार पशुधन विकास केन्द्र खोलने का कार्य प्रारम्भ किया जा चुका है। एकीकृत पशुधन विकास केन्द्रों द्वारा निजी क्षेत्र के माध्यम से गाय व भैंस में नस्ल सुधार किया जा रहा है एवं प्रदेश के पशुपालकों के घर पर ही कृत्रिम गर्भाधान की सेवाऐं उपलब्ध कराई जा रही है।

**पशु स्वास्थ्य एवं प्रजनन कार्ड**

प्रदेश में पशुधन के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु पशु स्वास्थ्य एवं प्रजनन कार्ड पशुपालकों को जारी किये गये है। जिनपर पशुधन की संख्या के साथ पशु प्रजनन एवं स्वास्थ्य संबंधी विवरण जैसे पशुओं में टीकाकरण, कृत्रिम गर्भाधान, रोगी पशुओं का उपचार, अन्तः एवं बाह्य परजीवी रोगो की रोकथाम के लिये कृमि नाशक दवा तथा पशुधन के बीमा संबंधी जानकारियों का उल्लेख रहता है।

अधिक जानकारी के लिये राज्य सरकार के कृषि विभाग से सम्पर्क करें।

**नोट** :– यद्यपि यह लेख बनाने में पूर्ण सावधानी बरती गई है फिर भी किसी भी त्रुटी के लिये लेखक जिम्मेदार नहीं है। अधिक जानकारी के लिये सम्बन्धित विभाग से सम्पर्क करें।

# स्वयं सहायता समूह एवं सहकारी समितियों का गठन महत्व एवं कार्य प्रणाली

**लीलाराम गुर्जर एवं रंगलाल मीणा**

स्वयं सहायता समूह (एस.एच.जी.) आपस में अपनापन रखने वाले एक जैसे सूक्ष्म उद्यमियों का समूह है जिसमें समूह के सदस्यों से प्राप्त आमदनी को अपने तरीके से बचत करके उसे एक फंड के रूप में एकत्रित करते है और उस फंड को समूह के सदस्यों को उनकी जरूरतों के लिये समूह द्वारा तय ब्याज अवधि और अन्य शर्तों पर दिया जाता है।

## स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य

स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य वित्तिय संसाधनो के साथ औपचारिक प्रणाली के अनुरूप लचीली, संवेदी और समयानुकूल जरूरतमंदो की क्रेडिट आवश्यकताओं को पूरा करना, बैंको और ग्रामीण जनता के बीच आपसी विश्वास का वातावरण बनाना, आदि है। वित्तीय संस्थाए समाज के जिन वर्गों तक नहीं पहुँच पाती हैं उन वर्गों में बचत की आदत और ऋण की सुविधाओं के प्रयोग को प्रोत्साहित करना है। महिला स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य महिलाओं को बचत करना सीखाना है एवं ऋण लेने के लिए आधार तैयार करना है। इसके अन्तर्गत आय अर्जित करने की क्रियाओं को समूह में पूर्ण किया जाता है जिससे महिलाओं की निर्णय शक्ति बढ़े तथा वे आर्थिक रूप से सशक्त बने। कहा जाता है कि एकता में शक्ति होती है। कोई भी कार्यक्रम अकेले सम्पन्न नहीं कराया जा सकता है। किन्तु वही कार्यक्रम एक साथ मिलकर करने पर जल्दी एवं व्यवस्थित रूप से पूर्ण होता है। आज के समय में महिलाओं के सशक्तिकरण की बहुत आवश्यकता है। यदी सशक्तिकरण के प्रयास से महिला समूह बनाकर एक साथ मिल–जुलकर अपनी योग्यतानुसार कार्य करें तो उसके सकारात्मक परिणाम आयेंगे। महिला समूह में आपसी सहयोग से क्रियात्मक व कलात्मक कार्य करके वे उससे धन कमाकार आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। स्वयं सहायता समूह का महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान है। दल में वे भ्रमण, गोष्ठी, प्रदर्शनी में भाग लेकर व्यावहारिक ज्ञान बढ़ा सकती है। स्वयं सहायता समूह द्वारा वे एक साथ आर्थिक, सामाजिक व विकास की गतिविधियों में सक्रिय हो सकती है। समूह में रहकर सूचना, ज्ञान, अनुभव व कौशल में वृद्धि कर सकती है। आपस में सहयोग से पूरे दल को सशक्त बना सकती है।

## स्वयं सहायता समूह का गठन

स्वयं सहायता समूह का गठन करते समय कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिए ताकि समूह सफलतापूर्वक चल सके। इस समूह में 10–20 सदस्य होने चाहिए जो परस्पर सहयोग से काम करने वाले होने चाहिए। समूह के सदस्यों की आयु 18 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। समूह के सभी सदस्य एक दूसरे के आर्थिक व सामाजिक स्तर का ध्यान रखते है तथा सहमति के आधार पर समूह का नामकरण करते है। समूह में स्त्री तथा पुरूष साथ या अलग–अलग भी हो सकते है। यह समूह समय–समय पर सामाजिक बुराईयों को समाधान करता है। बैंक खाता समूह के नाम पर खोला जाता है एवं बचत राशि सभी सदस्यों में बराबर रूप से मिलती है। स्वयं सहायता समूह में सर्व सहमति से अध्यक्ष, सचिव व कोषाध्यक्ष चुना जाता है जिस का कार्यकाल भी निर्धारित होता है। समय–समय पर समूह की बैठक होती रहती है जिसमें तय किया जाता है कि ऋण न लौटाने वाले पर उचित कार्यवाही की जाए तथा आवश्यकता पढ़ने पर समूह द्वारा आकस्मिक बैठक बुलाने का भी प्रावधान होता है। समूह में ज्यादा बचत राशि होने पर बैंक डाकघर में जमा कराया जाता है। यदि समूह कोई भी व्यवसाय करना चाहता है तो उसे ऋण मिल जाता है। समूह एक रजिस्टर रखता है जिसमें आय तथा व्यय का विवरण रखा जाता है। महिला दल खाली समय में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामान से क्रियात्मक व कलात्मक सामान तैयार करके उसे मेले व बाजार में बेचती है, जिससे आय होती है।

**स्वयं सहायता समूह से लाभ**

व्यक्ति, समाज एवं देश के विकास के लिए धन एक आवश्यक साधन है जिसकी पूर्ति व्यक्ति अपने बचत के द्वारा एवं अन्य स्त्रोत जैसे बैंक, कॉपरेटिव सोसायटी इत्यादि के द्वारा करता है। बैंक एवं अन्य ऋण के स्त्रोतों से ऋण लेना व्यक्ति की साख पर निर्भर करता है एसी स्थिति में महिलाओं के लिए और भी समस्या बनी रहती है। आवश्यकतानुसार ऋण की उपलब्धता के लिए स्वयं सहायता समूह कारगर साबित होते है। समूह बनाने से बैंक में साख बनती है जिससे उन्हें आसानी से ऋण मिलता रहता है। इस कारण महिलाओं में निर्णय क्षमता व आत्मनिर्भरता में वृद्धि होती है, जिससे आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का समाधान होता है। समाज में उनकी साख बढ़ती है साथ ही उन्हें काम के लिये दूसरी जगहों पर नहीं जाना पड़ता जिससे गांव पलायन की समस्या से निजात मिलती है। समय पर धन की उपलब्धता से महिलाओं के अपने रहन–सहन एवं जीवन स्तर में सुधार होता है साथ ही वे अपने बच्चों की शिक्षा एवं परवरिश एक अच्छे ढ़ंग से कर सकती है। आवश्यकता पढ़ने पर बैंक, कॉपरेटिव सोसायटी व अन्य सोसायटी से भी आसानी से ऋण मिल जाता है। समूह के लाभ को देखकर समाज की अन्य महिलाओं को भी प्रेरणा मिलती है जिससे एक उत्कृष्ट समाज का निर्माण होता है।

**सहकारी समिति**

लोगों का ऐसा संघ है जो अपने पारस्परिक लाभ (सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक) के लिए स्वेच्छापूर्वक सहयोग करते हैं। औद्योगिक क्रांति के कारण आर्थिक तथा सामाजिक असंतुलन के परिणाम स्वरूप भारत में सहकारी आंदोलन की शुरूआत हुई। पूंजीवादी देश जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान और समाजवादी देश दोनों प्रकार के देशों में सहकारी समितियों ने विशेष स्थान बनाया है।

'सहकारी' शब्द का अर्थ है– साथ मिलकर कार्य करना। इसका अर्थ हुआ कि ऐसे व्यक्ति जो समान आर्थिक उद्देश्य के लिए साथ मिलकर काम करना चाहते हैं वे समिति बना सकते हैं। इसे 'सहकारी समिति' कहते हैं। यह ऐसे व्यक्तियों की स्वयं सेवी संस्था है जो अपने आर्थिक हितों के लिए कार्ये करते है। यह अपनी सहायता स्वयं और परस्पर सहायता के सिद्धान्त पर कार्य करती है। सहकारी समिति में कोई भी सदस्य व्यक्तिगत लाभ के लिए कार्य नहीं करता है। इसके सभी सदस्य अपने–अपने संसाधनों को एकत्र कर उनका अधिकतम उपयोग कर कुछ लाभ प्राप्त करते हैं, जिसे वो आपस में बांट लेते हैं।

सहकारी समिति, संगठन का एक प्रकार है जिसमें व्यक्ति अपनी इच्छा से, समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितों के लिए मिलकर कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ, भेड़–बकरी पालक अपने जानवरों को उचित मुल्य पर बेचने हेतु एक सहकारी समिति बना सकते हैं जिसके माध्यम से वे अपने जानवरों को सीधे तौर पर माँस निर्यातकों से सम्बन्ध रखकर उनकों बेच सकते है। जिससे बिचोलियों के लाभ का उन्मूलन हो सकता है।

**सहकारी समितियों की विशेषताएँ**

**स्वैच्छिक संस्थाः**

एक सहकारी समिति व्यक्तियों की एक स्वैच्छिक संस्था है। एक व्यक्ति किसी भी समय सहकारी समिति का सदस्य बना सकता है, जब तक चाहे उसका सदस्य बना रह सकता है और जब चाहे सदस्यता छोड़ सकता है। खुली सदस्यताः सहकारी समिति की सदस्यता समान हितों वाले सभी व्यक्तियों के लिए खुली होती है। जाति, लिंग, वर्ण अथवा धर्म के आधार पर सदस्यता प्रतिबंधित नहीं होती, परन्तु किसी विशेष संगठन के कर्मचारियों की संख्या के आधार पर सीमित हो सकती है।

**प्रथक वैद्यानिक इकाईः**

एक सहकारी उपक्रम को 'सहकारी अधिनियम 1912' अथवा राज्य सरकार के संबंद्ध सहकारी समिति अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण कराना अनिवार्य है। एक सहकारी समिति का अपने सदस्यों से पृथक वैधानिक अस्तित्व होता है।

**वित्तीय स्रोत**

सहकारी समिति में पूंजी सभी सदस्यों द्वारा लगाई जाती है। इसके अलावा, पंजीकरण के बाद समिति ऋण ले सकती है। सरकार से अनुदान भी प्राप्त कर सकती है।

**सेवा उद्देश्य :**

एक सहकारी समिति का प्राथमिक उद्देश्य अपने सदस्यों की सेवा करना है, यद्यपि यह अपने लिए उचित लाभ भी अर्जित करती है। मताधिकार : एक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार होता है चाहे उसके पास कितने ही अंश हो।

**सहकारी समितियों के प्रकार**

सहकारी समितियों का वर्गीकरण उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की प्रकृति के आधार पर किया जा सकता है। सहकारी समितियों के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैः

**उपभोक्ता सहकारी समितियाँ –**

उपभोक्ताओं को यह उचित मूल्य पर उप उपभोक्ता वस्तुऐं उपलब्ध करवाती हैं।ये समितियां आम उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए बनाई जाती हैं। ये सीधे उत्पादकों और निर्माताओं से माल खरीद कर वितरण श्रृंखला से मध्यस्थों का उन्मूलन कर देती है। इस प्रकार माल के वितरण की प्रक्रिया में मध्यस्थों का लाभ समाप्त हो जाता है और वस्तु कम मूल्य पर सदस्यों को मिल जाती हैं। कुछ सहकारी समितियों के उदाहरण हैं– केन्द्रीय भंडार, अपना बाजार, सुपर बाजार आदि।

**उत्पादक सहकारी समितियाँ :**

ये समितियां छोटे उत्पादकों और निर्माताओं द्वारा बनाई जाती हैं, जो अपने माल को स्वयं बेच नहीं सकते। समिति सभी सदस्यों से माल इकट्ठा करके उसे बाजार में बेचने का उत्तरदायित्व लेती है। अमूल दुग्ध पदार्थों का वितरण करने वाली गुजरात सहकारी दुग्ध वितरण संघ लिमिटेड ऐसी ही सहकारी विपणन समितियाँ है।

**सहकारी वित्तीय समितियाँ–**

इस प्रकार की समितियों का उद्देश्य सदस्यों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना है। समिति सदस्यों से धन इकट्ठा करके जरूरत के समय उचित ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराती है। ग्राम सेवा सहकारी समिति और शहरी सहकारी बैंक, सहकारी ऋण समिति के उदाहरण हैं।

**सहकारी सामूहिक आवास समितियाँ :**

ये आवास समितियाँ अपने सदस्यों को आवासीय मकान उपलब्ध कराने हेतु बनाई जाती है। ये समितियाँ भूमि क्रय करके मकानों अथवा फ्लेटों का निर्माण करती है तथा उनका आवंटन अपने सदस्यों को करती है।

''कोविड-19 से बचाव कार्यक्रम के अन्तर्गत

अनुसूचित जाति उपयोजना
''उन्नत भेड़-बकरी व खरगोश पालन''
अधिकारी प्रशासकों प्रशिक्षण कार्यक्रम

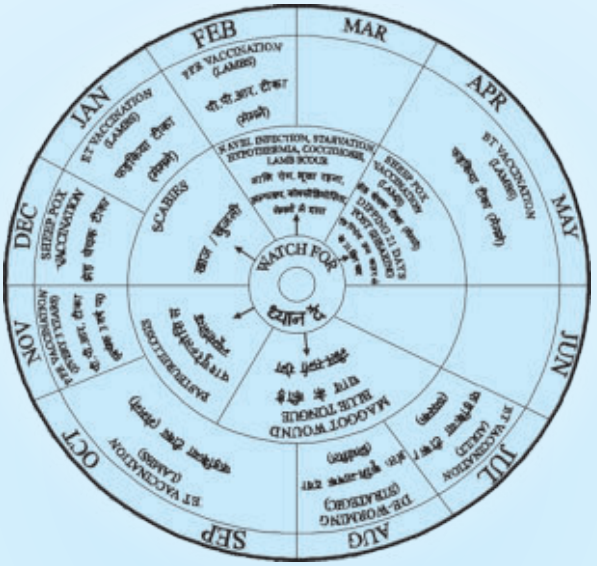

स्वच्छ भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

मुद्रक : शिवा ऑफसेट, जयपुर : 0141-2365721